रवीन्द्र की कहानियाँ

—★—

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों में अनवद्य कला-शिल्प, गठन कौशल, आश्चर्यजनक वैचित्र्य-प्रसार, काव्य-सौन्दर्य एवं औपन्यासिक चरित्र-विश्लेषण का अद्भुत समन्वय पाया जाता है बंगाली जीवन की संकीर्ण परिधि एवं अन्तर्निगूढ़ भावगम्भीरता के साथ उनका एक सहज सामञ्जस्य है। ये हमारे यंत्रबद्ध, वैचित्र्यहीन जीवन में जिस प्रचुर रसधारा एवं सूक्ष्म अनुभूतिमय सौन्दर्य को आविष्कृत करती हैं, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इन प्रेम-कहानियों में लेखक, कवि एवं मनस्तत्त्ववेत्ता की दृष्टि, जन-जीवन के ऊपर अपनी दुर्वार शक्ति का एक निगूढ़ भाव छोड़ जाती है। इनमें एक युग की समाप्ति तथा दूसरे का नवारम्भ है।

प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्र की कतिपय श्रेष्ठ एवं सुप्रसिद्ध कहानियाँ संकलित की गई हैं, जो मूल बँगला से शब्दशः अनूदित हैं। अब तक के सभी अनुवादों में यह सर्वोत्तम तथा प्रामाणिक है।

वीन्द्र-कथा-माला, संख्या-७

मणिहीन

(मूल-बँगला से अनूदित रवीन्द्र-कथाओं का सरस-संग्रह)

लेखक :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्र भा त प्र का श न

दो शब्द —

'मणिहीन' 'रवीन्द्र-कथा-माला' की सातवीं पुस्तक है। इस संग्रह में रविबाबू की सात कहानियाँ संकलित की गई हैं; सभी कथानक, शिल्प, भाव एवं पटुता की दृष्टि से एक-से-एक अधिक सुन्दर, आकर्षक तथा अनुपम हैं।

रवीन्द्र-कथा-माला का श्रीगणेश गुरुदेव की सम्पूर्ण लघु-कथाओं का मूल-बंगला से अक्षरश: प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत करने का संकल्प लेकर किया गया था। प्रसन्नता की बात है कि अब यह कार्य शीघ्र ही समाप्ति की ओर अग्रसर है। इस कथा-माला के अन्तर्गत जो पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, उनके एक वर्ष के भीतर ही दो-दो संस्करण हो जाने से इसकी लोकप्रियता का भी प्रमाण मिला है। आशा है, 'मणिहीन' को भी पाठकों द्वारा उसी स्नेह पूर्वक अपनाया जाएगा।

मसूरी-प्रवास
२६ जून, १६५८ ई०

—राजेश दीक्षित

कथा-सूची

मणिहीन

❀

उस जीर्णप्राय पक्के घाट के किनारे मेरा बोट बँधा हुआ था। उस समय सूर्य अस्त हो चुका था।

बोट की खुली छत्त के ऊपर माँझी नमाज पढ़ रहा था। पश्चिम के धधकते हुए अरुण-पट पर उसकी नीरव-उपासना क्षण-प्रतिक्षण तस्वीर सी खींचती चली जा रही थी। स्थिर रेखाहीन नदी के जल के ऊपर भाषातीत असंख्य वर्णच्छटाएँ देखते-देखते फीकी से गहरी लिखावट में, सुनहरे रंग से इस्पात के रंग में, एक आभा से दूसरी आभा में समाती जा रही थीं।

टूटे हुए जंगले एवं लटकते हुए बरामदे वाली जरा-ग्रस्त विशाल अट्टालिका के सामने पीपल के वृक्ष की जड़ों से विदीर्ण घाट के ऊपर झिल्ली-मुखर सन्ध्या-वेला में अकेले बैठे हुए मेरे शुष्क नेत्रों के कोने भीगना चाह रहे थे, इसी बीच सिर से पांव तक

चौंकते हुए सुना, "महाशय का कहाँ से आगमन हुआ है ?"

देखा, भद्र व्यक्ति स्वल्पाहार करने के कारण दुर्बल एवं माता लक्ष्मी द्वारा नितान्त अनादृत है। बंगाल देश के अधिकांश विदेशी नौकर जैसे एक प्रकार से बहुकाल जीर्ण, संस्कार-विहीन चेहरे वाले होते हैं, इसका भी वह रूप था। धोती के ऊपर एक मैली, तेल से भीगी आसामी-मटके की बटन खुली हुई चपकन; काम पूरा करके जैसे अभी-अभी लौट रहा हो। और जिस समय कुछ जलपान करना उचित था। उस समय वह हतभाग्य नदी के किनारे केवल शाम की हवा खाने आया था।

आगन्तुक ने सीढ़ियों पर बगल में ही आसन-ग्रहण किया। मैंने कहा, "मैं रांची से आ रहा हूं।"

"क्या करते हैं ?"

"व्यापार करता हूं।"

"कौन-सा व्यापार ?"

"हरड़, रेशम के कोए और लकड़ी का व्यवसाय।"

"क्या नाम है ?"

कुछ रुक कर मैंने एक नाम बोला। परन्तु वह मेरा अपना नाम नहीं था।

भद्रपुरुष की कौतूहल-निवृत्ति नहीं हुई। दुबारा प्रश्न किया, "यहाँ क्या करने आए हैं ?"

मैंने कहा, "वायुपरिवर्तन।"

आदमी को कुछ-आश्चर्य हुआ। कहा, "महाशय, आज प्राय: छ वर्षों से यहां की वायु एवं उसके साथ-साथ प्रतिदिन पन्द्रह ग्रेन कुनैन खाता हूं परन्तु कुछ भी तो फल नहीं पाया।"

मैंने कहा, "यह बात माननी ही होगी कि राँची से यहाँ की वायु में यथेष्ट परिवर्तन दिखाई देता है।"

उन्होंने कहा, "जी हाँ, यथेष्ट। यहाँ कहाँ ठहरेंगे ?"

मैंने घाट के ऊपर का जीर्ण-मकान दिखाते हुए कहा, "इस मकान में।"

शायद उस व्यक्ति के मन में सन्देह हुआ, मैंने इस खंडहर मकान में किसी गुप्त धन की खोज पाली है। परन्तु इस सम्बन्ध में और कोई तर्क नहीं उठाया, केवल आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व इस अभिशाप-ग्रस्त मकान में जो घटना घटी थी उसी का सविस्तार वर्णन किया।

वे सज्जन यहाँ पर स्कूल मास्टर हैं। उनके क्षुधा और रोग-शीर्ण मुख पर एक बड़े गंजे मस्तक के नीचे दो बड़ी-बड़ी आँखें कोटरों के भीतर अस्वाभाविक उज्जवलता लिए जल रही हैं। उन्हें देखकर अँग्रेजी-कवि कोलरिज वर्णित प्राचीन नाविक की बात मुझे याद आ गई।

मांझी ने नमाज पढ़ना समाप्त कर रसोई बनाने में मन लगा दिया था। सन्ध्या की अन्तिम आभा तक विलीन होजाने से घाट के ऊपर वाला जन-शून्य अँधेरा मकान अपनी पूर्वावस्था की प्रकाण्ड प्रेत-मूर्त्ति की भाँति निस्तब्ध खड़ा रहा।

स्कूल मास्टर ने कहा—

"मेरे इस गाँव में आने के प्रायः दस वर्ष पूर्व इस मकान में फणिभूषण साहा निवास करते थे। वे अपने पुत्र-हीन ताऊ दुर्गामोहन साहा की बड़ी जमींदारी एवं व्यवसाय के उत्तराधिकारी बने थे।

"परन्तु उन्हें एक ऐब लग गया था। उन्होंने पढ़ना लिखना सीखा था। वे जूता सहित साहबों के आफिस में घुसकर खालिस अँग्रेजी बोलते थे। उस पर भी फिर दाढ़ी रखा ली थी। अस्तु, अँग्रेज सौदागरों द्वारा उनकी उन्नति की सम्भावना तक नहीं थी। वे देखने भर से ही आधुनिक बंगाली प्रतीत होते थे।

"फिर घर में भी एक उपद्रव खड़ा हो गया। उनकी स्त्री थी सुन्दरी। एक तो कालिज में पढ़ी, उस पर परम सुन्दरी, अस्तु, उस समय का चाल-चलन नहीं रहा। यही क्यों, बीमार होने पर असिस्टेण्ट सर्जन को बुलाया जाता। भोजन, वस्त्र, आभूषण भी इसी परिमाण से बढ़ने लगे।

"महाशय, आप अवश्य ही विवाहित होंगे, अतएव यह बात आप से कहना व्यर्थ है कि साधारणतः स्त्री-जाति कच्चे आम, चरपरी मिर्च एवं कड़े पति को ही प्रेम करती है। जो अभागा मनुष्य अपनी स्त्री के प्यार से वंचित है वह बदशक्ल अथवा निर्धन हो, सो बात नहीं है, वह अत्यन्त निरीह है।

"यदि पूछें कि क्यों ऐसा होता है, मैंने इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सोच रक्खी हैं। जिसकी जो प्रवृत्ति एवं क्षमता होती है, उसकी चर्चा किए बिना वह सुखी नहीं होता। सींग पर सान धरने के लिए हिरन सख्त पेड़ के तने को ढूँढ़ता है। केले के पेड़ पर सींग घिसने में उसे सुख नहीं मिलता। नर-नारी का भेद होने के समय से स्त्रियाँ दूर रहने वाले पुरुष को अनेकों कौशलों से भुलाकर वशीभूत करने वाली विद्या की चर्चा करती आ रही हैं। जो पति स्वयं वशीभूत होकर बैठ जाता है उसकी स्त्रियाँ बेचारी एकदम बेकार हो जाती हैं। उन्होंने अपनी दादियों के पास से जो सौ लाख वर्षों से सान धरे हुए उज्ज्वल वरुणास्त्र, अग्निवाण और नागपाश के बन्धन पाए होते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं।

"स्त्रियाँ पुरुषों को भुलावे में डालकर अपनी शक्ति से प्रेम की अदायगी कराना चाहती हैं, पति यदि भला मनुष्य बनकर वैसा अवसर नहीं देता तो वह पति के भाग्य के लिए बुरा और स्त्री के लिए उससे भी अधिक होता है।

"नई सभ्यता के शिक्षा-मन्त्र से पुरुष ने अपनी स्वभावसिद्ध विधातादत्त महान् बर्बरता को खोकर आधुनिक दाम्पत्य सम्बंध को बहुत ही शिथिल कर डाला है। अभागा फणिभूषण आधुनिक सभ्यता की मशीन से अत्यन्त भला आदमी बनकर बाहर निकला था—व्यापार में भी वह सुविधा प्राप्त नहीं कर पाया, दाम्पत्य-जीवन में भी उसके लिए वैसा सुयोग नहीं हुआ।

"फणिभूषण की स्त्री मणिमालिका बिना चेष्टा के आदर, बिना आंसू बरसाये ढाका की साड़ी एवं बिना अजेय मान के बाजूबन्द पा लेती थी। इस तरह उसकी नारी-प्रकृति एवं उसी के साथ उसका प्यार निश्चेष्ट होगया था। वह केवल ग्रहण करती थी कुछ देती नहीं थी। उसका निरीह एवं निर्बोध पति सोचता था, दान ही शायद प्रतिदान पाने का उपाय है। एकदम उल्टा समझ गया था और क्या?

"इसका फल यही हुआ, कि पति को वह स्वयं ही ढाका की साड़ी एवं बाजूबन्द एकत्र करने वाली मशीन जैसा समझती थी; मशीन भी ऐसी सुचारु कि किसी भी दिन उसके पहिए में एक बूँद तेल डालने की भी आवश्यकता न पड़े!

"फणिभूषण का जन्मस्थान फूलबेड़िया था, व्यापार का स्थान यहाँ था। काम-काज से इसी जगह उसे अधिकतर रहना पड़ता था। फूलबेड़िया के मकान में उसकी माँ नहीं थी, तो भी बुआ और अन्य पाँच व्यक्ति थे। परन्तु फणिभूषण, बुआ और अन्य पाँच व्यक्तियों के उपकार के लिए ही खासतौर पर सुन्दरी स्त्री को घर नहीं लाया था। अस्तु, स्त्री को उसने पाँच व्यक्तियों के पास से लाकर इस कोठी में अकेले अपने ही पास रक्खा। परन्तु अन्यान्य अधिकारों से स्त्री के अधिकार में यही अन्तर है कि स्त्री को पाँच लोगों के पास से अलग करके

अकेले अपने ही पास रखने पर वह हर समय अपनी अधिक बनी रहे, सो बात नहीं है।

"स्त्री अधिक बातचीत नहीं करती थी, मुहल्ले की पड़ोसिनों के साथ भी उसका मेल-मिलाप अधिक नहीं था ; व्रत के उपलक्ष में दो ब्राह्मणों को भोजन कराना अथवा वैष्णवियों को दो पैसे भीख में देना उसे कभी भी नहीं अखरता था। उसके हाथ से कोई वस्तु नष्ट नहीं होती थी; केवल पति के आदर आदि के अतिरिक्त उसने और जो भी पाया, उस सबको जमा कर रक्खा था। आश्चर्य की बात यही थी कि वह अपने रूप-लावण्य का भी लेशमात्र अपव्यय नहीं होने देती थी। लोग कहते हैं, वह अपनी चौबीस वर्ष की आयु में भी चौदह वर्ष की भांति नवीना दिखाई देती थी। जिनका हृत्पिण्ड बरफ का पिण्ड है, जिनके हृदय में प्यार की जलन के दर्द को स्थान नहीं मिलता, वे लोग शायद दीर्घकाल तक ताजे बने रहते हैं, वे कृपण की भांति बाहर से अपने को ठोस बनाए रख सकते हैं।

"घन पल्लवित अत्यन्त सतेज लता की भांति विधाता ने मणिमालिका को निष्फल बनाए रक्खा, उसे सन्तान होने से वंचित कर दिया। अर्थात् उसे ऐसा कुछ नहीं दिया, जिसे वह अपने लोहे के सन्दूक के मणि-माणिक्य की अपेक्षा कुछ अधिक समझ सकती, जिससे वसन्त-कालीन प्रभात के नवीन सूर्य की भांति अपने कोमल उत्ताप से अपने हृदय के बरफ-पिण्ड को गलाकर गृहस्थी में एक स्नेह-रूपी झरने को बहा देती।

"परन्तु, मणिमालिका काम-काज में मजबूत थी। कभी भी उसने अधिक नौकर-चाकर नहीं रक्खे। जो काम उसके द्वारा हो सकता है, उसके लिए कोई वेतन ले जाए, इसे वह नहीं सह सकती थी। वह किसी के लिए भी चिन्ता नहीं करती थी, किसी

को भी प्यार नहीं करती थी, केवल काम करती एवं जमा करती, इसके लिए उसे रोग-शोक, ताप कुछ भी नहीं था, अपरिमित स्वास्थ्य, अविचलित शान्ति एवं संचित सम्पत्ति के बीच वह सवल बनी विराजती थी।

"अधिकांश पतियों के लिए यही यथेष्ट है; यथेष्ट ही क्यों? यह दुर्लभ है। शरीर के बीच कटि-प्रदेश नामक एक वस्तु है, कमर में दर्द हुए बिना उसकी याद ही नहीं आती; घर में आश्रय-स्वरूप 'स्त्री' नामक जो एक व्यक्ति होता है, प्यार की प्रताड़ना से उसे पग-पग पर एवं चौबीसों घन्टे अनुभव करने का नाम 'घर-गृहस्थी की कमर का दर्द' है। निरतिशय पतिव्रत स्त्री के लिए गौरव का विषय है परन्तु वह पति के लिए आरामदायक वस्तु नहीं होती, मेरा तो ऐसा ही मत है।

"महाशय, स्त्री का प्यार ठीक कितना पाया, ठीक कितना कम पड़ा, अत्यन्त सूक्ष्म काँटा लेकर उसे दिन-रात तौलने बैठना क्या पुरुष का काम है? स्त्री अपना काम करे। मैं अपना काम करूँ, घर का मोटा हिसाब तो यही है। अव्यक्त में कितना व्यक्त है, भाव में कितना अभाव है, सुस्पष्ट में भी कितना इशारा है, अणु-परमाणु में भी कितनी विपुलता है? प्यार-स्नेह के सम्बन्ध में इतनी सूक्ष्म बोधशक्ति विधाता ने पुरुष को नहीं दी, देने की आवश्यकता ही नहीं हुई। हाँ, पुरुषों में तिलभर अनुराग-विराग के लक्षण देखकर स्त्रियाँ तो वजन करने बैठ जाती हैं। बात के बीच असल मतलव को एवं मतलव के बीच असल बात को चीर-चीर कर चुन-चुन कर बाहर निकालने लगती हैं। कारण, पुरुष का प्यार ही स्त्रियों का बल है, उनमें जीवन-व्यवसाय का मूलधन है। इसी की हवा की गति को लक्ष्य करके ठीक समय पर ठीक तरह से पाल घुमा देने पर उनकी नाव बहने लगती है। इसीलिए विधाता ने प्यार तौलने की तराजू

को स्त्रियों के हृदय में लटका दिया है, पुरुषों के में नहीं ।

"परन्तु विधाता ने जो वस्तु स्त्रियों को नहीं दी, पुरुषों ने उसका संग्रह कर लिया है। कवियों ने विधाता को ठेंगा दिखा कर इस दुर्लभ यन्त्र को, इस दिग्दर्शक यन्त्रणा शलाका को बिना विचारे सर्वसाधारण के हाथों में दे दिया है । विधाता को दोष नहीं देता, उन्होंने स्त्री-पुरुष को यथेष्ट भिन्न करते हुए सृष्टि की है, परन्तु सभ्यता से वह भेद और नहीं रहेगा, अब तो स्त्रियाँ भी पुरुष हो गई हैं, पुरुष भी स्त्री बन गए हैं; अस्तु, घरों में से शान्ति और शृङ्खला बिदा हो गई है । अब तो शुभ विवाह से पूर्व पुरुष को व्याहा जा रहा है अथवा स्त्री को व्याहा जा रहा है, इसका किसी प्रकार निश्चय न कर पाकर वर-कन्या दोनों का ही चित्त आशङ्का से धक्-धक् करता रहता है ।

"आप विरक्त हो रहे हैं ? अकेला पड़ा रहता हूं, स्त्री के समीप से निर्वासित हूं; दूर रहने पर गृहस्थी के अनेक निगूढ़ तत्त्व मन में उदय होते रहते हैं—यह सब छात्रों के समक्ष बोलने का विषय नहीं है, बातचीत के प्रसङ्ग में आप से कह लिया, विचार करके देखिएगा ।

"मोटी बात यह है कि खाद्य-पदार्थों में न नमक कम होता एवं न पान में चूना ही अधिक होता, तथापि फणिभूषण का हृदय 'न-जाने-क्या' नामक एक दुःसाध्य उत्पात अनुभव करता रहता। स्त्री का कोई दोष नहीं था, कोई भ्रम नहीं था, तो भी पति को कोई सुख नहीं था । वह अपनी सहधर्मिणी के शून्य-गह्वर हृदय को लक्ष्य करके केवलमात्र हीरा-मोती के गहने ही ढालता रहता, परन्तु वे सब जाकर पड़ते लोहे के सन्दूक में, हृदय में शूल ही बना रहता । उसके चाचा दुर्गामोहन प्यार को इतनी सूक्ष्मता से नहीं समझते थे, इतने कातर होकर नहीं देखते थे, इतने प्रचुर परिमाण में नहीं देते थे, अपितु चाची

द्वारा वह अजस्र परिमाण में प्राप्त होता था। व्यापारी होने के लिए नई रोशनी का बाबू बनने से काम नहीं चलता एवं पति होने के लिए पुरुष बनने की आवश्यकता होती है, इस बात पर सन्देह भी मत कीजिएगा।"

ठीक इसी समय सियारों का झुण्ड झाड़ियों के भीतर से अत्यन्त उच्च स्वर में चीत्कार कर उठा। मास्टर महाशय के कथा-स्रोत में कुछ मिनट के लिए बाधा पड़ गई। ठीक ऐसा लगा उस अन्धकारपूर्ण सभा भूमि से कौतुक-प्रिय शृङ्गाल-समुदाय स्कूल मास्टर द्वारा व्याख्या की गई दाम्पत्य-नीति को सुनने से अथवा नवीन-सभ्यता से दुर्बल फणिभूषण के आचरण से, रह-रह कर अट्टहास कर उठने लगा। उनके भावोच्छ्वास के निवृत हो जाने पर जल-स्थल पहले से दूना निस्तब्ध होगया, तब मास्टर साहब सन्ध्या के अँधेरे में अपने वृहत् उज्ज्वल नेत्रों से घूरते हुए कहानी कहने लगे—

"फणिभूषण के जटिल एवं बहुविस्तृत व्यवसाय में अचानक एक विपत्ति की सम्भावना आ उपस्थित हुई। बात क्या थी? इसे मुझे जैसे अव्यवसायी के लिए समझना एवं समझाना कठिन है। संक्षेप में यह है कि अचानक न जाने किस कारण से बाजार में उसे अपनी साख रखना कठिन हो गया। यदि केवल-मात्र पाँच दिन के लिए ही वह कहीं से डेढ़ लाख रुपया निकाल सकता, बाजार में एक बार बिजली की भाँति इन रुपयों का चेहरा दिखा सकता, तो उससे क्षणभर में ही संकट से उबर कर उसके व्यवसाय की नाव पाल बँधी नौका के समान तेजी से चल सकती।

"रुपयों का प्रबन्ध नहीं हो रहा था। स्थानीय परिचित महाजनों से उधार लेने को तय्यार हुआ। इस तरह का जन-रव उठजाने पर उसके व्यवसाय का दूना अनिष्ट होगा, इस

आशंका से उसे अपरिचित स्थान से ऋण लेने का प्रयत्न करके देखना पड़ा। वहाँ उपयुक्त वस्तु गिरवी रक्खे बिना काम चल नहीं सकता था।

"आभूषण गिरवी रख देने से लिखा-पढ़ी एवं विलम्ब का कारण नहीं रहता, झटपट एवं सहज ही काम हो जाता है।

"फणिभूषण एक बार स्त्री के पास गया। अपनी स्त्री के पास पति जिस सहज भाव से जा सकता है, फणिभूषण में उस तरह से जाने की क्षमता नहीं थी। वह दुर्भाग्य से अपनी स्त्री को प्यार करता था, जैसा प्यार काव्य का नायक काव्य की नायिका से करता है। जिस प्यार में सँभल-सँभल कर पाँव रखने पड़ते हैं एवं सभी बातें मुहँ खोल कर बाहर नहीं निकल पातीं; जिस प्यार का प्रबल आकर्षक सूर्य एवं पृथ्वी के आकर्षण की तरह बीच में एक दूरव्यापी व्यवधान बनाये रहता है।

"फिर भी, ऐसा-वैसा मामला आ पड़ने पर काव्य के नायक को भी प्रेयसी के समीप हुण्डी एवं बन्धक एवं हैण्ड-नोट का प्रसङ्ग उठाना पड़ता है, परन्तु स्वर बँध जाता है, वाक्य-स्खलन हो जाता है, ऐसी सब स्पष्ट काम की बातों के बीच भी भावों की जड़ता एवं वेदना की कँप-कँपी आ उपस्थित होती है। अभागा फणिभूषण स्पष्ट रूप से नहीं कह सका, 'अजी मुझे अवश्यकता आ पड़ी है, अपने गहने दे दो।'

"बात तो कही, परन्तु अत्यन्त दुर्बल भाव से कही। मणिमालिका ने जब कठोर मुँह बना कर हाँ-ना कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसे एक अत्यन्त निष्ठुर आघात लगा, परन्तु स्वयं आघात नहीं किया। कारण, पुरुषोचित बर्बरता उसमें लेशमात्र भी नहीं थी। जहाँ जबर्दस्ती निकाल लेना उचित था, वहाँ उसने अपने हृदय के क्षोभ तक को दबा लिया। जहाँ प्यार का एक मात्र अधिकार है, सर्वनाश हो जाने पर भी वहाँ बल का

प्रवेश नहीं होने देगा, यही उसके मन का भाव था। इस सम्बन्ध में उसकी यदि भर्त्सना की जाती तो भी शायद वह इस तरह सूक्ष्म तर्क करता कि बाजार में यदि अन्याय के कारण से भी मेरी साख न रहे तो भी उसके कारण बाजार को लूट लेने का अधिकार मुझे नहीं है, स्त्री यदि स्वेच्छापूर्वक विश्वास करके मुझे गहने न दे तो मैं जबरदस्ती नहीं निकाल ले जा सकता। बाजार में जिस तरह साख है, घर में उसी तरह प्यार है, बाहुबल तो केवल रणक्षेत्र की वस्तु है। पग-पग पर इस तरह के अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म तर्कसूत्र काटने के लिए ही क्या विधाता ने पुरुषों को ऐसा उदार, ऐसा प्रबल, ऐसा बृहदाकार बनाया है। उन्हें क्या बैठे-बैठे अत्यन्त सुकुमार चित्तवृत्ति को निरतिशय सूक्ष्मता-पूर्वक अनुभव करने का अवकाश है, यह क्या उन्हें शोभा देता है ?

"जो भी हो, अपनी उन्नत चित्तवृति के गर्व से स्त्री के गहनों का स्पर्श न करके फणिभूषण अन्य उपाय द्वारा धन-संग्रह करने के लिए कलकत्ते चला गया।

"गृहस्थी में साधारणतः स्त्री को पति जितना पहिचानता है, पति को स्त्री उसकी अपेक्षा अधिक पहिचानती है; परन्तु पति की प्रकृति यदि अत्यन्त सूक्ष्म होती है तो स्त्री के अणुवीक्षण से वह पूर्णरूपेण नहीं पकड़ी जा सकती। हमारे फणिभूषण को फणिभूषण की स्त्री ठीक नहीं समझ पाती थी। स्त्रियों का 'अशिक्षित-पटुत्व' सम्पूर्णतः बहुकाल-अतीत प्राचीन संस्कारों द्वारा गठित है, अत्यन्त आधुनिक पुरुष उससे बाहर जा पड़े हैं। ये लोग और ही तरह के हैं! ये भी स्त्रियों की भाँति ही रहस्य-मय हो उठे हैं।। साधारण पुरुषों के जो बड़े-बड़े दरजे हैं, अर्थात् कोई तो बर्बर है, कोई निर्बोध है, कोई अन्धा है, उन सब में से किसी भी दरजे में इन्हें ठीक तरह से नहीं रक्खा जा

सकता ।

"अस्तु, मणिमालिका ने परामर्श के लिए अपने मन्त्री (सलाहगीर) को बुलवाया । गाँव के संबंध से अथवा दूर के संबंध से मणिमालिका का एक भाई फणिभूषण की कोठी में गुमाश्ते के नीचे काम करता था । उसका ऐसा स्वभाव नहीं था कि अपने काम द्वारा उन्नति लाभ करता, किसीएक उपलक्ष के कारण आत्मीयता के जोर से वेतन एवं वेतन से भी अधिक कुछ न कुछ इकट्ठा कर लेता था ।

"मणिमालिका ने उसे बुलाकर सब बातें कहीं; पूछा, 'अब क्या राय है ।

"उसने अत्यन्त बुद्धिमान की भाँति सिर हिलाया—अर्थात् रङ्ग-ढङ्ग ठीक नहीं है । बुद्धिमान लोग कभी भी रङ्ग-ढङ्ग अच्छे नहीं देखते । उसने कहा, 'वाबू कहीं से भी रुपये इकट्ठे नहीं कर सकते, अन्त में तुम्हारे इन गहनों को ही खींचा जाएगा ।'

मणिमालिका मनुष्यों को जिस तरह से जानती थी, उससे समझा, ऐसा होना भी संभव है और यही ठीक भी है । उसकी दुश्चिन्ता अत्यन्त तीव्र हो उठी । गृहस्थी में उसके सन्तान नहीं है; पति वे हैं तो सही परन्तु पति के अस्तित्व को वह हृदय में अनुभव नहीं करती, अतएव जो कुछ उसका एक मात्र संचित धन है, वह उसके लड़के की भाँति क्रमशः वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है, जो रूपक मात्र नहीं है, जो वास्तव में सोना है, जो माणिक है, जो छाती का, जो कण्ठ का, जो मस्तक का है—वह बहुत दिनों की अनेक साधों की सामग्री एक पल में ही व्यवसाय के अतल स्पर्श-गह्वर में डूब जाएगी, इसकी कल्पना करके उसका सम्पूर्ण शरीर बर्फ की तरह जम गया । उसने कहा, 'क्या किया जाय ?'

"मधुसूदन ने कहा, 'गहनों को लेकर इसी समय मायके चलो ।' गहनों का कुछ अंश, यही क्यों, अधिकांश ही उसके

हिस्से में आए, बुद्धिमान मधुसूदन ने मन ही मन उसका उपाय निश्चित कर लिया।

"मणिमालिका इस प्रस्ताव पर उसी क्षण सहमत होगई।

"अषाढ़ की सन्ध्या के समय इसी घाट के किनारे एक नाव आकर लगी। घन मेघाच्छन्न प्रत्यूष के निविड़ अन्धकार में निद्राहीन मेढ़कों की कलरव ध्वनि के बीच एक मोटी चादर से पाँव से सिर तक को ढके हुए मणिमालिका नाव पर चढ़ी। मधुसूदन नौका के भीतर से जग कर बोला, 'गहने का बक्स मेरे पास रख दो।' मणि ने कहा, 'सो पीछे होगा, अब नाव खुलवा दो।'

"नाव खोल दी गई। तीव्र-प्रवाह में नाव सन्नाती हुई चल दी।

"मणिमालिका सारी रात एक-एक करके अपने सब गहनों को सब अंगों में पहनती रही, सिर से लेकर पाँव तक कोई स्थान नहीं बचा। क्योंकि बक्स में गहने भर लेने से वह बक्स हाथ से छुट सकता है, यह आशंका उसे थी। परन्तु शरीर में पहन लेने पर उसका बध किए बिना उन गहनों को कोई नहीं ले सकता था।

"साथ में किसी तरह का बक्स न देखकर मधुसूदन कुछ समझ नहीं सका, मोटी चादर के नीचे मणिमालिका के शरीर-प्राण के साथ-साथ शरीर-प्राण से अधिक गहने लदे हुए थे, उसका वह अनुमान भी नहीं कर सका। मणिमालिका फणिभूषण को नहीं पहिचानती थी परन्तु मधुसूदन को पहिचानना उसे बाकी न रहा।

"मधुसूदन गुमाश्तों के पास एक चिट्ठी छोड़ आया था कि वह मालकिन को मायके पहुँचाने के लिए रवाना हो रहा है। गुमाश्ता फणिभूषण के पिता के समय का था। उसने अत्यन्त

नाराज होकर ह्रस्व इ-कार को दीर्घ ई-कार एवं दन्त्य-स को तालव्य-श करके मालिक को एक पत्र लिखा। अच्छी बँगला नहीं लिखी परन्तु स्त्री को अधिक प्रश्रय देना पुरुषोचित नहीं है, इस बात को अच्छी तरह प्रकट कर दिया।

"फणिभूषण ने मणिमालिका के मन की बात ठीक तरह समझ ली। उसके मन को यह प्रबल आघात लगा कि मैं गुरु-तर क्षति की संभावना रहते हुए भी स्त्री के अलङ्कार छोड़कर प्राणपण से अन्य उपायों द्वारा धन-संग्रह करने में प्रवृत्त हूं, तो भी मुझ पर सन्देह क्यों? मुझे आज भी नहीं पहिचाना?

"अपने प्रति जिस कठोर अन्याय पर क्रुद्ध होना उचित था, फणिभूषण उससे क्षुब्धमात्र हुआ। पुरुषों में विधाता का न्यायदन्ड है, उनमें उन्होंने (विधाता ने) वज्राग्नि निहित कर रक्खी है, अपने प्रति अथवा दूसरे के प्रति अन्याय के संघर्ष से यदि वह धधक कर न जल उठें तो उन्हें धिक्कार है। पुरुष लोग दावाग्नि की भाँति क्रुद्ध हो उठें सामान्य कारण से; एवं स्त्रियाँ श्रावण के मेघ की भाँति अश्रुपात कर सकें बिना कारण के; विधाता ने ऐसा बन्दोबस्त कर दिया है, परन्तु अब उसकी चलती ही नहीं।

"फणिभूषण ने अपराधिनी स्त्री को लक्ष्य करके मन ही मन कहा, 'यदि तुम्हारा यही विचार है तो ऐसा ही हो, अपना कर्त्तव्य मैं कर जाऊँगा।' और भी पांच-छै शताब्दी बाद जब केवल आध्यात्मिक शक्ति से संसार चलेगा तब जिसे लाभ ग्रहण करना उचित था, उस भावी-युग का फणिभूषण उन्नीसवीं शताब्दी में अवतीर्ण होकर उस आदियुग की स्त्री के साथ विवाह कर बैठा था, जिसकी बुद्धि को शास्त्रों में प्रलयंकारी कहा गया है। फणिभूशण ने स्त्री को एक अक्षर का भी पत्र नहीं लिखा एवं मन ही मन प्रतिज्ञा की कि इस सम्बन्ध में स्त्री से वह कभी भी किसी

भी बात का उल्लेख नहीं करेगा । कैसी भीषण दण्ड-विधि है !

"दस दिन बाद किसी प्रकार यथेष्ट रुपये एकत्र कर विपत्ति से उद्धार पाया हुआ फणिभूषण घर आकर उपस्थित हुआ । वह जानता था, पिता के घर में गहने आदि रखकर इतने दिनों में मणिमालिका घर लौट आई होगी । उस दिन के दीन-प्रार्थीभाव को त्याग कर, कृतकार्य कृतीपुरुष के रूप में स्त्री के समीप जाने पर मणि किस भाँति लज्जित होगी एवं अनावश्यक प्रयत्न के लिए कुछ अनुतप्त होगी, यह कल्पना करता हुआ फणिभूषण अन्तःपुर के शयनागार के द्वार के समीप आकर खड़ा हो गया ।

"देखा, द्वार बन्द है । ताला तोड़कर घर में घुस कर देखा, घर सूना है । कोने में लोहे का सन्दूक खुला पड़ा है, उसमें गहने आदि का चिह्न भी नहीं है । पति की छाती में धक् से एक चोट लगी ! मन को लगा संसार उद्देश्यहीन है । एवं प्यार तथा वाणिज्य-व्यवसाय सब कुछ व्यर्थ है । मैं इस गृहस्थी-रूपी पिंजड़े की प्रत्येक शलाका के ऊपर प्राण न्यौछावर करके बैठा हुआ हूं, परन्तु उसके भीतर पक्षी नहीं है, रखने पर भी वह रहता नहीं । तब दिन रात हृदय की खान के रक्तमाणिक एवं अश्रुजल की मुक्तामाल द्वारा किसे सजाए बैठा हूं । इस चिरजीवन के सर्वस्व द्वारा निर्मित शून्य-संसार के पिंजड़े को फणिभूषण ने मन ही मन लात मार कर बहुत दूर फेंक दिया ।

"फणिभूषण ने स्त्री के संबंध में किसी तरह का प्रयत्न नहीं करना चाहा । मन में सोचा, यदि इच्छा होगी तो लौट आएगी । बृद्ध ब्राह्मण गुमाश्ते ने आकर कहा, 'चुप बैठे रहने से क्या होगा, मालकिन बहू की खबर तो लेनी ही चाहिए ।' यह कहकर उसने मणिमालिका के मायके में आदमी भेज दिया । वहाँ से खबर आई, मणि अथवा मधु अब तक वहाँ नहीं

पहुँचे हैं ।

'तब चारों ओर ढुंढेरा पड़ गया । नदी के किनारे-किनारे पूछते-पूछते आदमी दौड़े । मधु की तलाश करने के लिए पुलिस में खबर दी गई—कौनसी नौका, कौन-सा माँझी, किस मार्ग से वे लोग कहाँ चले गए, इसका कोई सन्धान नहीं मिला ।

"सब तरह से आशा छोड़कर, एक दिन फणिभूषण ने सन्ध्या के समय अपने परित्यक्त शयन-गृह में प्रवेश किया । उस दिन जन्माष्टमी थी, सवेरे से ही अविराम वर्षा हो रही थी । उत्सव के उपलक्ष में गाँव में एक मेला लग रहा था, वहां एक शामियाने के बीच 'रासलीला' हो रही थी । मूसलाधार वर्षा के शब्द के साथ लीला के गानों के स्वर कोमलतम होते हुए कानों में आ रहे थे । यह जो खिड़की के ऊपर ढीले कुलावे वाला दरवाजा झूल रहा है, यहीं फणिभूषण अँधेरे में अकेला बैठा हुआ था—बरसाती हवा, वर्षा की बौछार, एवं रासलीला के गीत घर के भीतर प्रवेश कर रहे थे, कोई खयाल ही नहीं था । घर की दीवाल पर आर्ट-स्टूडियों में बनी लक्ष्मी और सरस्वती की दो तस्वीरें टंगी हुई थीं, अलगनी पर एक गमछा और तौलिया, एक चूड़ी-पाड़ की साड़ी और एक डोरिये की साड़ी तुरन्त व्यवहार करने योग्य भाव से चुनी हुई लटक रही थीं । घर के कोने में तिपाई के ऊपर पीतल के डिब्बे में मणिमालिका द्वारा अपने हाथों से लगाए गए कुछ पान सूखे पड़े थे । काँच की अलमारी के भीतर उसके बचपन से इकट्ठे किए हुए चीनी मिट्टी के खिलौने, ऐसेन्सों की शीशियाँ, रंगीन काँच के डिकैन्टर, शौकीनी ताश, समुद्र की बड़ी-बड़ी कौड़ियाँ, यही क्यों, साबुन की खाली साबुनदानियाँ तक अत्यन्त तरतीबवार सजाकर रक्खी हुई थीं; जिस अत्यन्त छोटे विशिष्ट ढक्कन में रक्खे खूबसूरत मिट्टी के तेल के लैम्प को वह प्रतिदिन साफ करके अपने हाथ

से जला कर ताक के ऊपर रख दिया करती थी, वह भी यथा-स्थान बुझा हुआ एवं म्लान हुआ रक्खा था, केवल वह छोटा सा लैम्प ही इस शयन कक्ष में मणिमालिका के अन्तिम समय तक का निरुत्तर साथी था; सब कुछ सूना बना कर जो चला जाता है, उसके भी इतने चिह्न, इतना इतिहास, समस्त जड़-सामग्री के ऊपर अपने सजीव हृदय का इतने स्नेह के हस्ताक्षर छोड़ जाता है। आओ मणिमालिका, आओ, अपने दीपक को तुम्हीं जलाओ, अपने घर में तुम्हीं उजाला करो, दर्पण के सामने खड़ी होकर अपनी चुनी हुई साड़ी को तुम्हीं पहिनो, तुम्हारी वस्तुएँ तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रही हैं। तुमसे कोई कुछ भी प्रत्याशा नहीं करता, केवल तुम्हीं उपस्थित होकर अपने अक्षय यौवन, अपने अम्लान सौन्दर्य को लेकर चारों ओर इस सब विपुल, विक्षिप्त, अनाथ, जड़ सामग्री के ढेर को प्राणों के ऐक्य से संजीवित बना दो; इन सब मूक, प्राणहीन पदार्थों का अव्यक्त-क्रन्दन घर को श्मशान बनाए हुए है।

"गहरी रात में कब किस समय वर्षा की धारा एवं रास-लीला के गीत रुक गए। फणिभूषण खिड़की के समीप जैसा बैठा था, वैसा ही बैठा रहा। खिड़की के बाहर एक संसार व्यापी अखण्ड अन्धकार—उसके मन को लगा जैसे सामने यमलोक का एक आकाश-भेदी सिंहद्वार है, जैसे इस जगह खड़े होकर रोते हुए पुकारने पर चिरकाल से लुप्त वस्तु अचिरकाल की भाँति एकबार दिखाई भी दे जाएगी। इस स्याही से भी अधिक काले मृत्यु के दरवाजे पर, इस अत्यन्त कठिन कसौटी के पत्थर पर उस खोऐ हुए सोने की एक रेखा खिच भी सकती है।

"इसी समय एक ठक्-ठक् शब्द के साथ-साथ गहनों की झम्-झम् का शब्द सुना गया। ठीक ऐसा लगा, वह शब्द नदी के घाट के ऊपर से उठता चला आ रहा है। उस समय नदी का

44914

जल एवं रात्रि का अन्धकार एक होकर मिल गए थे। पुलकित फणिभूषण दोनों उत्सुक नेत्रों को अन्धकार में धकेल-धकेल कर, छेद-छेदकर देखने की चेष्टा करने लगा—स्फीत-हृदय एवं व्यग्र-दृष्टि से व्यथित हो उठा, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। देखने की चेष्टा जितनी अधिक बढ़ उठी, अन्धकार उतना ही घनीभूत, संसार उतना ही छाया के समान हो आया। प्रकृति ने निशीथ-रात्रि में अपने मृत्यु-निकेतन के गवाक्षद्वार पर अचानक अतिथि का आगमन देख कर द्रुत हाथों से और भी कुछ अधिक मोटा पर्दा डाल दिया।

"वह शब्द क्रमशः घाट की सब से उँची सीढ़ी को छोड़कर मकान की ओर अग्रसर होने लगा। मकान के सामने आकर रुक गया। ड्योढ़ी बन्द करके दरवान रासलीला देखने गया था। तब उस बन्द दरवाजे के ऊपर ठक्-ठक झम्-झम् करके आघात होने लगा, जैसे आभूषणों के साथ-साथ एक कठोर वस्तु दरवाजे के ऊपर आकर पड़ रही हो। फणिभूषण और नहीं ठहर सका। बुझे हुए दीपक वाले कमरों से पार होता हुआ अँधेरी सीढ़ियों से उतर कर बन्द दरवाजे के समीप आ उपस्थित हुआ। दरवाजे का बाहर से ताला बन्द था। फणिभूषण प्राण-पण से दोनों हाथों द्वारा उस दरवाजे को झकझोरते ही उस धक्के एवं उस के शब्द से चौंक कर जग उठा। देखा, वह निद्रित अवस्था में ही ऊपर से नीचे उतर आया है। उसका सम्पूर्ण शरीर पसीने से लथपथ था, हाथ-पांव बरफ की भाँति ठण्डे थे एवं हृत्पिण्ड बुझने वाले दीपक की भाँति धक्-धक् कर रहा था। स्वप्न भंग हो जाने पर देखा, बाहर अब कोई शब्द नहीं है, केवल श्रावण की धारा उस समय भी झर-झर शब्द करती हुई गिर रही थी एवं उसी के साथ सम्मिलित रूप से सुनाई पड़ रहा था कि रासलीला के लड़के सबेरे के स्वर में

तान ले रहे है ।

"यद्यपि बात सब स्वप्न की थी, परन्तु इतनी अधिक निकटवर्ती एवं सत्य जैसी थी कि फणिभूषण को लगा, जैसे बहुत थोड़े से के लिए ही वह अपनी असम्भव आकांक्षा की आश्चर्य-जनक सफलता से वंचित रह गया । उस जल-वर्षा के साथ दूर से आने वाली भैरवी की तान उससे कहने लगी, यह जागरण ही स्वप्न है, यह संसार ही मिथ्या है ।

"दूसरे दिन भी रासलीला थी एव दरवान की भी छुट्टी थी । शशिभूषण ने हुक्का दिया, आज सारी रात ड्योढ़ी का दरवाजा खुला रहने दिया जाय । दरवान ने कहा, 'मेले के लिए अनेकों स्थानों से अनेकों प्रकार के लोग आए हुए हैं, दरवाजा खुला रखने का साहस नहीं होता ।' फणिभूषण ने यह बात नहीं मानी । दरवान ने कहा, 'तो मैं सारी रात हाजिर रह कर पहरा दूँगा ।' शशिभूषण ने कहा, 'यह नहीं होगा, तुम्हें लीला देखने जाना पड़ेगा ।' दरवान आश्चर्यचकित रह गया ।

"दूसरे दिन शाम से ही दीपक बुझा कर फणिभूषण अपने शयनकक्ष की उसी खिड़की पर आ बैठा । आकाश में बिन बरसे बादल घुमड़ रहे थे एवं चारों ओर किसी-एक अनिश्चित आसन्न प्रतीक्षा की निस्तब्धता थी । मेढ़कों का अश्रान्त कलरव एवं रासलीला के गीतों की चीत्कारध्वनि उस स्तब्धता को भंग नहीं कर पा रही थी, केवल उसके बीच एक असंगत अद्भुत रस का विस्तार कर रही थी ।

"बहुत रात बीते एक बार मेंढ़क झिल्ली एवं रासलीला के लड़कों का दल चुप होगया एवं रात के अँधेरे के ऊपर एक दूसरा ही कोई अँधेरा आ पड़ा । लगा, अब समय आगया है ।

"पहले दिन की भाँति नदी के घाट पर ठक्-ठक् एवं

झम्-झम् का एक शब्द उठा । परन्तु फणिभूषण ने उस ओर आँखें नहीं फिराई । उसे भय हुआ, पीछे अधीर इच्छा एवं अशान्त चेष्टा से उसकी सम्पूर्ण इच्छा एवं समस्त चेष्टा व्यर्थ न हो जाय । पीछे आग्रह का वेग उसकी इन्द्रिय-शक्ति को अभिभूत न कर डाले । उसने अपनी सम्पूर्ण चेष्टा को अपने मन का दमन करने के लिए प्रयुक्त कर दिया, लकड़ी की मूर्त्ति की भाँति कठोर बनकर स्थिर हुआ बैठा रहा ।

"नूपुरों के शब्द ने आज घाट से धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए मुक्त द्वार के भीतर प्रवेश किया । सुनाई पड़ा, अन्दर महल की गोल सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते वह शब्द ऊपर उठ रहा है । फणिभूषण अपने को और नहीं रोक पाया, उसका हृदय तूफान में पड़ी डोंगी की भाँति पछाड़ खाने लगा एवं साँस रुकजाने का उपक्रम हो गया । गोल सीढ़ियों को समाप्त कर वह शब्द बरामदे में होता हुआ क्रमशः घर के समीप आने लगा । अन्त में ठीक उसी शयनगृह के द्वार के समीप आकर खट्-खट् एवं झम्-झम् रुक गई । केवल चौखट ही पार करनी बची थी ।

"फणिभूषण फिर नहीं बैठा रह सका । उसका रुद्ध आवेग एक ही क्षण में प्रवल वेग से उच्छ्वासित हो उठा, वह विद्युतवेग से चौकी से उठकर रोते हुए चिल्ला उठा, 'मणि !' तभी चकित हो जगकर देखा, उसके उस व्याकुल कण्ठ के चीत्कार से कमरे की खिड़कियाँ तक हिलने लगीं हैं । बाहर वही मेंढ़कों का कलरव एवं रासलीला के लड़कों का बेसुरा गान चल रहा था ।

"फणिभषण ने अपने ही मस्तक पर जोर का आघात किया ।

"दूसरे दिन मेला समाप्त हो गया । दूकानदार एवं रासलीला वाले चले गए । फणिभूषण ने हुक्म दिया, उस दिन सन्ध्या के बाद उसके मकान में केवल उसे छोड़ कर और कोई

नहीं रहेगा। नौकरों से समझा, बाबूजी तान्त्रिकों की भाँति किसी साधन में प्रवृत्त हैं। फणिभूषण सारे दिन उपवास किए रहा।

"जन-शून्य मकान में सन्ध्या के समय फणिभूषण खिड़की के पास आकर बैठ गया। उस दिन आकाश में जगह-जगह बादल नहीं थे, एवं धौत-निर्मल वायु के बीच तारागण अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई दे रहे थे। कृष्ण पक्ष की दशमी के चाँद के उठने में बहुत देर थी। मेला समाप्त हो जाने के कारण परि-पूर्ण नदी में कोई नाव भी नहीं थी एवं उत्सव के जागरण से पीड़ित सारा गाँव दो रात तक जगने के बाद आज गहरी नींद में सोया हुआ था।

"फणिभूषण एक चौकी पर बैठा हुआ चौकी की पीठिका के ऊपर सिर को रक्खे हुए नक्षत्रों को देख रहा था; सोच रहा था, एक दिन जब उसकी आयु उन्नीस वर्ष की थी, जब वह कलकत्ते के कालिज में पढ़ता था, जब सन्ध्या के समय गोल दिग्घी की घास पर चित्त लेटा हुआ हाथ के ऊपर माथा रक्खे इन अनन्त-कालीन नक्षत्रों को देखता रहता था एवं याद करता रहता था अपनी उस नदी-तीरवर्त्ती ससुराल के एक एकान्त कक्ष में चौदह-वर्षीया वय-सन्धिगता मणि के उस भोले चेहरे को, उस समय वह विरह कितना समधुर लगता था, उस समय उन नक्षत्रों का आलोक-स्पन्दन हृदय के यौवन-स्पन्दन के साथ-साथ कितने विचित्र 'वसन्त रागेण यतितालाभ्यां' के साथ बज-बज उठता था! आज उन्हीं नक्षत्रों ने अग्नि-द्वारा आकाश में मोहमुद्रा के कितने श्लोक लिख रक्खे हैं; कह रहे हैं, 'संसारोऽयमतीव विचित्रः!'

"देखते-देखते सब नक्षत्र छिप गए। आकाश में से एक अन्धकार झुक कर एवं पृथ्वी पर से एक अन्धकार उठकर आँखों

के ऊपर वाले एवं नीचे वाले पलकों की भाँति एक जगह आकर मिल गए। आज फणिभूषण का चित्त शान्त था। वह निश्चित रूप से जानता था, आज उसका अभीष्ट सिद्ध होगा, साधक के समीप मृत्यु अपने रहस्य का उद्घाटन कर देगी।

"पिछली रात की भाँति वही शब्द नदी के पानी के भीतर से घाट की सीढ़ियों के ऊपर उठा। फणिभूषण दोनों आँखें बन्द करके स्थिर दृढ़ चित्त से ध्यानासन में बैठ गया। शब्द ने द्वारपाल-हीन ड्योढ़ी के भीतर प्रवेश किया, शब्द जनशून्य अन्तःपुर की गोल सीढ़ियों से होकर घूमता-घूमता ऊपर उठने लगा, शब्द लम्बे बरामदे से पार हुआ एवं शयन-कक्ष के द्वार पर आकर क्षणभर के लिए थम गया।

"फणिभूषण का हृदय व्याकुल एवं सर्वाङ्ग रोमांचित हो उठा, परन्तु आज उसने आँखें नहीं खोलीं। शब्द ने चौखट पार करके अँधेरे कमरे में प्रवेश किया। अलगनी पर जहाँ साड़ी चुनी हुई टँगी थी, आले में जहाँ किरासिन तेल का लैम्प रखा था, तिपाई के कोने पर जहाँ पान के डिब्बे में सूखे पान रक्खे थे, एवं उस विचित्र सामग्रीपूर्ण अलमारी के समीप प्रत्येक स्थान पर थोड़ा-थोड़ा खड़े होते हुए अन्त में वह शब्द शशिभूषण के बिल्कुल पास आकर थम गया।

'उस समय फणिभूषण ने आँखें खोलीं एवं देखा, कमरे में नवोदित दशमी का चन्द्रालोक आकर प्रविष्ट हो रहा है, एवं उसकी चौकी के ठीक सामने एक कङ्काल खड़ा हुआ है। उस कङ्काल की आठों उँगलियों में अँगूठियाँ, हथेली पर रतन चक्र, पहुँचों में कड़े, भुजाओं में बाजूबन्द, गले में कण्ठी, माथे पर सोने का टीका था, उसके सिर से पाँव तक हड्डी-हड्डी में एक-एक आभूषण स्वर्ण और हीरे से झक्-झक् कर रहे थे। सभी आभूषण ढीले होने के कारण ढिलमिला रहे थे, परन्तु अंग से

नीचे खिसक कर नहीं गिर रहे थे। सबकी अपेक्षा भयानक उसके अस्थिमय मुख पर उसके दो सजीव नेत्र थे; वही काली पुतलियाँ, वही लम्बी-लम्बी-पलकें, वही सजल उज्ज्वलता, वही अविचलित दृढ़ शान्त दृष्टि। आज से अठारह वर्ष पहले एक दिन आलोकित सभा-मण्डप में नौबत की शहनाई की आवाज के बीच फणिभूषण ने जिन दोनों विस्तृत सुन्दर काले-काले चमकते हुए नेत्रों को शुभदृष्टि के समय पहली बार देखा था, वे ही दोनों नेत्र आज श्रावणमास की अर्द्ध-रात्रि में कृष्णपक्ष की दशमी की चांदनी में दिखाई दिए, देखकर उसके सम्पूर्ण शरीर का रक्त बरफ जैसा हो आया। प्राणपण से दोनों आँखें बन्द करने की चेष्टा की, परन्तु किसी तरह कर नहीं सका; उसके नेत्र मृत-मनुष्य के नेत्रों की भांति निर्निमेष भाव से देखते रहे।

"तब उस कङ्काल ने स्तम्भित फणिभूषण के मुख की ओर अपनी दृष्टि स्थिर करके दाहिने हाथ को उठाकर चुपचाप उँगली का संकेत किया। उसकी चार उँगलियों की हड्डियों में हीरे की अंगूठियाँ चमचमा उठीं।

"फणिभूषण मूर्ख की भांति उठकर खड़ा हो गया। कंकाल द्वार की ओर चल दिया, हड्डी-हड्डी में पहने हुए गहनों का कठोर शब्द होने लगा। फणिभूषण रस्सी में बँधी हुई पुतली की भाँति उसके पीछे-पीछे चला। बरामदा पार हुआ, घोर अंधकारपूर्ण गोल सीढ़ियों से उतर-उतर कर खट्-खट् ठक्-ठक् झम्-झम् करता-करता नीचे आ पहुँचा। नीचे वाला बरामदा पार करके जन-शून्य दीप-हीन ड्योढ़ी में प्रवेश किया; अन्त में ड्योढ़ी पार करके ईंट की गिट्टी बिछे हुए बगीचे के रास्ते से बाहर निकल आया। गिट्टियों पर हड्डियों के पांव पड़ने से कड़-कड़ की आवाज होने लगी। उस जगह क्षीण ज्योत्सना सघन तालपत्रों के बीच अटक कर कहीं से भी छुटकारे का मार्ग

नहीं पा रही थी; उस वर्षा से निविड़गन्ध अँधेरे पथ पर जुग-नुओं की चमक के बीच दोनों ही नदी के घाट पर आ उप-स्थित हुए ।

"घाट की जिन सीढ़ियों पर होकर शब्द ऊपर उठा था, उन्हीं सीढ़ियों पर होता हुआ अलंकृत-कंकाल अपनी आन्दोलन-हीन सीधी गति से कठिन शब्द करता हुआ एक-एक पाँव उतरने लगा । परिपूर्ण बरसाती नदी के प्रबल स्रोत में पानी के ऊपर चाँदनी की एक दीर्घ रेखा झलमला रही थी ।

"कङ्काल नदी में घुसा, अनुवर्त्ती फणिभूषण ने भी पानी में पाँव रक्खा । जलस्पर्श करने मात्र से ही फणिभूषण की तन्द्रा छूट गई । अब उसके सामने पथ-प्रदर्शक नहीं था, केवल नदी के दूसरे किनारे पर पेड़-पौधे स्तब्ध खड़े हुए थे एवं उनकी चोटियों पर खण्ड चाँद शान्त अवाक् भाव से झाँक रहा था । सिर से पाँव तक बारम्बार सिहर-सिहर कर फिसले हुए पाँवों से फणिभूषण बहाव के बीच गिर पड़ा । यद्यपि तैरना जानता था परन्तु स्नायुओं पर उसका वश नहीं चला । स्वप्न के बीच से केवल क्षणभर के लिए जागरण के प्रान्त में आकर दूसरे ही क्षण अतलस्पर्श सुषुप्ति के बीच निमग्न हो गया ।"

कहानी समाप्त कर स्कूल मास्टर क्षणभर के लिए ठहर गए । अचानक रुक जाने से ही जान पड़ा, कि उन्हें छोड़ कर इस संसार की अन्य सभी वस्तुऐं नीरव-निस्तब्ध हो गई हैं । बहुत देर तक मैंने कोई बात नही कहीं एवं अँधेरे में वे मेरे मुँह का भाव भी नहीं देख पाए ।

मुझ से पूछा, "आपने क्या इस कहानी पर विश्वास नहीं किया ?"

मैंने जिज्ञासा की, "आपने क्या इस पर विश्वास किया है ?"

उन्होंने कहा, "नहीं,, क्यों नहीं किया, इसके कुछ कारण बताता हूं। प्रथम तो प्रकृति महारानी उपन्यास-लेखिका नहीं हैं, उनके हाथ में बहुत से काम हैं।"

मैंने कहा, "दूसरे, मेरा ही नाम श्रीयुत फणिभूषण साहा है।"

स्कूल मास्टर तनिक भी लज्जित न हो कर बोले, "मैंने तब तो ठीक ही अनुमान किया था। आपकी स्त्री का नाम क्या था?"

मैंने कहा, "नृत्यकाली।"

राजपथ की बात

❀

मैं राजपथ हूं। अहिल्या जिस प्रकार मुनि के शाप से पाषाण हो गई थी, मैं भी ठीक उसी प्रकार किसी के शाप से चिरनिद्रत सुदीर्घ अजगर की भाँति वन-पर्वतों के बीच होता हुआ, वृक्षों की छाया के नीचे होता हुआ, सुविस्तृत मैदानों की छाती के ऊपर होता हुआ, देश-देशान्तर को घेरता हुआ, बहुत दिनों से जड़-निद्रा में सो रहा हूं। असीम धैर्य धारण किए धूलि में लोटता हुआ शाप के अन्त होने के समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं चिर-दिनों से स्थिर-अविचल हूं, चिर-दिनों से एक ही भाव से सो रहा हूं, परन्तु तो भी मुझे एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं है। इतना भी विश्राम नहीं है कि अपनी इस कठिन शुष्क शय्या के ऊपर थोड़ी-सी कच्ची, स्निग्ध, श्यामल घास तक उगा सकूँ; इतना भी समय नहीं है कि अपने सिरहाने के पास बहुत छोटा एक

नीलवर्ण का वनपुष्प खिला सकूँ । बोल नहीं सकता, अपितु अन्ध-भाव से सब कुछ अनुभव करता हूं—रात-दिन पद-शब्द—केवल पद-शब्द ही । मेरी इस गहरी जड़-निद्रा के बीच लाख-लाख पाँवों के शब्द दिन-रात दुःस्वप्न की भाँति प्रकट होते रहते हैं । मैं चरणों के स्पर्श से उन्हें हृदय में पढ़ सकता हूं । मैं समझ सकता हूं, कौन घर जा रहा है, कौन विदेश जा रहा है, कौन काम से जा रहा है, कौन विश्राम करने जा रहा है, कौन उत्सव में जा रहा है, कौन श्मसान में जा रहा है । जिसकी सुखपूर्ण गृहस्थी है, स्नेह की छाया है, वह प्रत्येक पद क्षेप (कदम) पर सुख की तस्वीर खींचता चलता है; वह प्रत्येक कदम में मिट्टी में आशा के बीज रोप-रोप जाता है; लगता है, जहाँ-जहाँ उसके पाँव पड़े हैं, वहाँ जैसे पलभर में ही एक-एक लता अंकुरित और पुष्पित हो उठेगी । जिसका घर नहीं है, आश्रय नहीं है, उसके पदक्षेप में आशा नहीं, अर्थ नहीं, उसके पदक्षेप में दाहिना नहीं, बाँया नहीं, उसके पाँव जैसे कहते रहते है, 'मैं चलूँ भी तो क्या, रुकूँ भी तो कहाँ'—उसके पदक्षेप से मेरी सूखी हुई धूलि जैसे और भी सूख जाती है ।

पृथ्वी की कोई भी कहानी मैं पूरी नहीं सुन पाता । आज सौ-सौ वर्षों से मैं कितने ही लाख लोगों की कितनी ही हंसी कितने ही गीत, कितनी ही बातें सुनता आ रहा हूं ; परन्तु केवल थोड़ी-सी ही सुन पाता हूं । शेष को सुनने के लिए जिस समय मैं कान लगाए रहता हूं, तब दीख पड़ता है, वे लोग अब नहीं हैं । इस तरह कितने ही वर्षों की कितनी ही अधूरी बातें अधूरे गीत मेरी धूलि के साथ धूलि हो गये हैं, मेरी धूलि के साथ उड़ते फिरते हैं, उन्हें कौन जान पाता है ! वह सुनो, एक व्यक्ति ने गाया, "तारे बलि-बलि आर बला हॅल ना ।" ×

× उससे कहते-कहते और नहीं कहा गया ।

अहा, थोड़ा रुको, गीत को समाप्त कर के जाना, सब बात सुन लूं। कहाँ ठहरा फिर! गाते-गाते-कहाँ चला गया, शेष गीत सुना नहीं जा सका। केवल यही एक पद आधी रात तक मेरे कान में ध्वनित होता रहेगा। मन ही मन सोचूँगा, वह कौन चला गया। कहाँ जा रहा है सो नहीं जानता। जो बात कही नहीं जा सकी, उसी को फिर कहने गया है क्या। अबकी बार जब राह में फिर उससे भेट होगी, वह जब मुंह उठाकर उसके मुँह की ओर देखेगा, उस समय कहते-कहते फिर भी यदि न कह सके तो? उस समय सिर नीचा किए, मुँह फिराये, अत्यन्त धीरे-धीरे लौटने के समय फिर यदि गाए 'तारे बलि-बलि आर बला हॅल ना'।

समाप्ति और स्थायित्व शायद कहीं होगा, परन्तु मैं तो नहीं देख पाता। एक चरण-चिन्ह तक तो मैं अधिक देर तक रख नहीं पाता। अविश्राम चिन्ह पड़ रहे हैं, फिर नये पाँव आकर अन्य पाँवों के चिन्ह मिटा जाते हैं। जो चला जाता है, वह तो पीछे कुछ छोड़ नहीं जाता, यदि उसके माथे के बोझ से कुछ गिर भी पड़ता है, तो सहस्रों चरणों के नीचे निरन्तर दलित होकर वह कुछ ही देर में धूलि में मिल जाता है। फिर भी ऐसा भी देखा है कि किसी-किसी महापुरुष के पुण्यस्तूप में से ऐसे कुछ अमर-बीज भी निकल पड़े हैं, जो धूलि में पड़ कर अंकुरित और वर्द्धित होकर मेरे किनारों पर स्थायी रूप से विराज रहे हैं और नये पथिकों को अपनी छाया का दान कर रहे हैं।

मैं किसी का लक्ष्य नहीं हूं, मैं सबका उपाय मात्र हूं। मैं किसी का घर नहीं हूं, मैं सबको घर में ले जाता हूं। मुझे रात-दिन यही शोक है—मुझ पर कोई पाँव रक्खे नहीं रहता, मेरे ऊपर कोई खड़े रहना नहीं चाहता। जिनका घर बहुत

दूर अवस्थित है, वे मुझे ही अभिशाप देते हैं, मैं जो परम धैर्य धारण किए उन्हें घर के द्वार तक पहुँचा देता हूं, उसके लिए कृतज्ञता कहाँ मिलती है ? उन्हें घर में जाकर विराम, घर में जाकर आनन्द, घर में जाकर सुख-सम्मिलन मिलता है, और मेरे ऊपर केवल थकावट का बोझ, केवल अनिच्छा से किया हुआ श्रम, केवल विच्छेद रह जाता है । केवल क्या सुदूर से, घर की खिड़की से, मधुर हास्य-लहरी पंख पसार कर सूर्यलोक से बाहर निकल कर मेरे पास आने मात्र से ही चकित होकर शून्य में मिल जाएगी ? घर के उस आनन्द का एक भी कण क्या मैं नहीं पाऊँगा ?

कभी-कभी उसे भी पाता हूं । बालक-बालिकाएँ हँसते-हँसते कलरव करते-करते मेरे पास आकर खेलते रहते हैं । वे अपने घरों का आनन्द सड़क पर ले आते हैं । उनके पिताओं का आशीर्वाद, माताओं का स्नेह, घर से बाहर निकल कर सड़क पर आकर भी जैसे घर की रचना कर देता है । मेरी धूलि को वे अपना स्नेह दे जाते हैं । वे मेरी धूलि के ढेर बना कर, और अपने छोटे-छोटे हाथों से उन स्तूपों पर कोमल आघात करके अत्यन्त स्नेह से उन्हें सुला देना चाहते हैं । निर्मल हृदय लेकर बैठे हुए उनके साथ बातें करते हैं । हाय हाय, इतना स्नेह पाकर भी वे उन्हें उत्तर नहीं दे पाते !

छोटे-छोटे कोमल पांवों को जब मेरे ऊपर रख कर चले जाते हैं तब अपने को बहुत कठिन अनुभव करने लगता हूं, लगता है, उनके पांव दुख रहे होंगे । फूल की पंखड़ियों की भाँति कोमल बन जाने की इच्छा होती है । राधिका ने कहा था—

'जहँ-जहँ अरुण-चरण चलि जाता,
तहँ-तहँ धरणि होइ मम गाता ।'

अरुण-चरण ऐसी कठिन धरती के ऊपर क्यों चलते हैं। परन्तु वे यदि नहीं चलते तो शायद कहीं भी हरी घास उत्पन्न नहीं होती।

प्रतिदिन जो नियमित रूप से मेरे ऊपर चलते हैं, उन्हें मैं विशेष रूप से पहिचानता हूं। वे नहीं जानते कि उनके लिए मैं प्रतीक्षा करता रहता हूं। मैंने मन-ही-मन उन लोगों की मूर्त्ति की कल्पना कर ली है। बहुत दिन हुए, ऐसी ही एक मूर्त्ति अपने दोनों कोमल चरणों को लिए प्रतिदिन अपराह्न काल में बहुत दूर से आती—दो छोटे-छोटे नूपुर रुनझुन-रुनझुन करते हुए उसके पाँवों में रो-रो कर बजते रहते। शायद उनके दोनों ओंठ बोलने वाले ओठ नहीं थे, शायद उसके दोनों बड़े बड़े नेत्र सन्ध्या-कालीन आकाश की भाँति अत्यन्त म्लान-भाव से मुंह की ओर देखते रहते। जहाँ वह चबूतरे पर स्थित बट वृक्ष के बाईं ओर मेरी एक शाखा गाँव की ओर चली गई है, वहाँ थके हुए शरीर से वह चुपचाप खड़ी रहती। एक और कोई व्यक्ति दिन काम समाप्त करके गीत गाता हुआ उसी समय गाँव की ओर चला जाता। वह शायद, किसी ओर नहीं देखता, कहीं भी नहीं रुकता—शायद आकाश के तारों की ओर भले ही देखता, अपने घर के द्वार पर पहुँच कर पुरबी-गीत समाप्त करता था। उसके चले जाने पर बालिका थके हुए पाँवों से फिर जिस राह से आती थी उसी राह से लौट जाती। बालिका जब लौटती, तब मालूम होता, अँधेरा हो आया है; सन्ध्या के अँधेरे का शीतल-स्पर्श अपने सर्वाङ्ग से अनुभव कर उठता। तब गोधूलि के कौए की पुकार एक दम रुक जाती; पथिकों का आवागमन अधिक नहीं रहता। सन्ध्या की वायु से रह-रहकर बांसों की झाड़ियाँ झर-झर शब्द कर उठतीं। ऐसे ही कितने दिन, ऐसे ही प्रतिदिन, वह धीरे-धीरे आती, धीरे-धीरे

चली जाती । एक दिन फागुन मास के अन्त में, अपराह्न काल में जब बहुत से आमों का बौर हवा के कारण झर कर गिर रहा था—तब एक अन्य आदमी जो और आया करता था, वह फिर नहीं आया । उस दिन बहुत रात होने पर वह बालिका घर लौट गई । जिस तरह बीच-बीच में वृक्षों से सूखे पत्ते झर कर गिर रहे थे, उसी तरह बीच-बीच में दो-एक बूंद आँसू मेरी नीरस तप्त धूलि के ऊपर पड़ कर सूखते जा रहे थे । फिर उसके दूसरे दिन अपराह्न काल में बालिका उसी जगह उसी वृक्ष के नीचे आ खड़ी हुई, परन्तु उस दिन भी वह व्यक्ति नहीं आया । फिर रात में वह धीरे-धीरे घर की ओर लौट पड़ी । कुछ दूर जाकर वह फिर चल नहीं पाई । मेरे ऊपर, धूलि के ऊपर लोटने लगी । दोनों बाहुओं से मुंह ढांक कर छाती फाड़ कर रोने लगी । कौन हो बेटी ! आज इस निर्जन रात्रि में मेरे हृदय पर भी कोई आश्रय लेने आयेगा । तू जिसके पास से लौट आई है, वह क्या मुझसे भी अधिक कठोर है । तू जिसे पुकार कर उत्तर नहीं पा सकी वह क्या मुझ से भी अधिक अन्धा है ?

बालिका उठी, खड़ी हुई, आँखें पोछीं—राह छोड़ कर समीपवर्त्ती वन के भीतर चली गई । शायद अब भी वह प्रतिदिन की भाँति शान्त मुख से घर का काम करेगी; शायद वह किसी से भी कोई दुःख की बात नहीं कहेगी; केवल किसी किसी दिन सन्ध्या के समय घर के आँगन में चन्द्रमा के प्रकाश में पाँव फैलाकर बैठी रहती थी, किसी के पुकारते ही फिर उसी समय चौंक कर उठती हुई घर में चली जाती थी । परन्तु उसके दूसरे दिन से आज तक मैंने उसके चरण-स्पर्श का अनुभव नहीं किया ।

ऐसे कितने ही पद-शब्द शान्त हो गए है, मैं क्या उन

सब को याद रख सकता हूं। केवल उन्हीं पाँवों की करुण नूपुर-ध्वनि अब भी कभी-कभी याद आ जाती है। परन्तु मुझे क्या फिर एक क्षण भी शोक करने का अवसर है। शोक किस के लिए करूंगा। ऐसे कितने आते हैं, कितने ही चले जाते हैं।

कैसी कड़ी धूप है। उहू-हूहू। एक-बार सांस छोड़ता हूं, और तपी हुई धूलि सुनील आकाश को धूसरित करती हुई उड़ी चली जाती है। धनी-दरिद्र, सुखी-दुखी, बुढ़ापा-यौवन, हास्य-रुदन, जन्म-मृत्यु सभी तो मेरे ऊपर होकर एक ही निःश्वास में धूलि के स्रोत की भाँति उड़ते चले जाते हैं। इसीलिए मार्ग को न हँसी है, न रोना ही है। घर ही अतीत के लिए शोक करता है, वर्त्तमान के लिए सोचता है, भविष्यत् के आशा-पथ को देखता रहता है। परन्तु मार्ग वर्त्तमान के प्रत्येक पल में नवीन अभ्यागतों को लेकर ही व्यस्त बना रहता है। ऐसे स्थान पर अपने पद-गौरव के प्रति विश्वास करके अत्यन्त दर्प के साथ पदक्षेप करते हुए कौन अपने स्थायी चरण-चिह्न को रख जाने का प्रयत्न कर पाता है। यहाँ की वायु में जो दीर्घ निःश्वास छोड़े जा रहे हो, तुम्हारे चले जाने पर क्या वे सब तुम्हारे पीछे पड़कर तुम्हारे लिए विलाप करते रहेंगे, नवीन अतिथियों की आँखों से आँसू खींच लाएंगे? वायु के ऊपर वायु क्या टिक सकती है? नहीं, नहीं, यह व्यर्थ की चेष्टा है। मैं कुछ भी पड़ा नहीं रहने दूँगा—हँसी भी नहीं, रुदन भी नहीं। केवल मैं ही पड़ा हुआ हूं।

अपरिचिता

❀

आज मेरी आयु सत्ताईस वर्ष की है। यह जीवन न दीर्घत्व के हिसाब से बड़ा है, न गुणों के हिसाब से बड़ा है। तो भी इसका एक विशेष मूल्य है। यह उसी फूल की भांति है जिसके हृदय के ऊपर भँवरे आकर बैठते हैं, एवं उस पदक्षेप का इतिहास उनके जीवन के मध्य फल की भाँति गुच्छे बना देता है।

वह इतिहास आकार में छोटा है, उसे छोटा करके ही लिखूँगा।

कालिज में जितनी परीक्षाएं पास करनी थीं, उन सब को मैंने चुका दिया था। बचपन में मेरे सुन्दर चेहरे को लेकर गुरुजी ने सेमल के फूल एवं माकाल❀ के फल

❀एक छोटा लाल रंग का फल जो ऊपर से देखने में अत्यन्त सुन्दर लगता है परन्तु जिसके भीतर के बीज कड़ुए तथा काले होते हैं।

से मेरी तुलना करके मजाक करने का सुयोग प्राप्त किया था। इससे उस समय मैं बहुत लज्जित होता था; परन्तु बड़े होने पर यह बात सोचता हूँ यदि जन्मान्तर तक रहूँ तो मेरे मुख का स्वरूप एवं पण्डित महाशय के मुख का मजाक सदैव इसी तरह प्रकाशित होता रहेगा।

मेरे पिता एक समय गरीब थे। वकालत करके उन्होंने बहुत रुपये इकट्ठे किए, भोग करने का समय वे पलभर को भी नहीं पा सके। मृत्यु के समय जब उन्होंने हाँफ छोड़ी, वही उनका पहला अवकाश था।

उस समय मेरी आयु छोटी थी। माँ ने ही मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया। माँ गरीब घर की लड़की है, अत; हम लोग धनी हैं, यह बात वे भी नहीं भूलीं, मुझे भी नहीं भुलाने दी। बचपन में, मैं गोद ही गोद में बड़ा हुआ—शायद, इसीलिए अन्त तक मुझे पूर्णरूपेण आयु प्राप्त नहीं हुई। आज भी मुझे देख कर लगेगा कि मैं अन्नपूर्णा की गोद में गणेश जी का छोटा भाई हूँ।

मेरे वास्तविक अभिभावक मेरे मामा हैं। वे मेरी अपेक्षा अधिक से अधिक छै वर्ष बड़े हैं। परन्तु, फल्गू नदी* की बालू की भाँति उन्होंने हम लोगों की पूरी गृहस्थी को अपने भीतर सोख लिया है। उन्हें खोदे बिना अब एक चुल्लू भर रस भी नहीं मिल सकता। इस कारण किसी-सम्बन्ध में भी मुझे कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

कन्याओं के पिता स्वीकार करेंगे, कि मैं सत्पात्र हूँ। तम्बाकू तक नहीं पीता। भला मनुष्य होने में कोई झंझट नहीं

*फल्गूनदी गया में बहती है। उसकी विशेषता यह है कि उसका पानी बालू के भीतर बहता है, अर्थात् पानी के ऊपर बालू दिखाई पड़ती है।

है, इसी से मैं अत्यन्त भला आदमी हूँ। माता की आज्ञा मान कर चलने की क्षमता मुझ में है—वस्तुत, न मानने की क्षमता मुझ में नहीं है। अन्तःपुर के शासनानुसार चलने के लिए ही मैं प्रस्तुत हुआ हूँ, यदि कोई कन्या स्वयंवरा होने वाली हो तो उसे मेरे इन सुलक्षणों को स्मरण रखना चाहिए।

अनेकों बड़े घरों से मेरा रिश्ता आया। परन्तु मामा, जो पृथ्वी पर मेरे भाग्य देवता के एक प्रधान एजेन्ट हैं, विवाह के सम्बन्ध में उनकी विशेष राय थी। धनी की कन्या उन्हें पसन्द नहीं। हमारे घर में जो स्त्री आए वह सिर झुका कर आए, यही वे चाहते थे। यद्यपि रुपयों के प्रति आसक्ति उनकी अस्थि-मज्जा में लिपटी थी। वे ऐसा समधी चाहते थे कि जिसके पास रुपये न हों अथवा जो रुपये देने का कसूर न करे। जिसका शोषण किया जा सके तथा घर आने पर गुड़गुड़ी के बदले नियमानुसार हुक्के में तम्बाकू देने पर जिसकी नालिश न चल सके।

मेरा मित्र हरीश कानपुर में काम करता है। उसने छुट्टियों में कलकत्ते आकर मेरे मन को उतावला कर दिया। वह बोला, "अरे, लड़की की यदि कहते हो तो एक अच्छी लड़की है।"

कुछ दिन पूर्व ही एम. ए. पास किया है। सामने जितनी दूर तक दृष्टि जाती है, छुट्टियाँ धू-धू कर उठती हैं; परीक्षा नहीं, उम्मेदवारी नहीं, नौकरी नहीं, अपने सम्बन्ध में सोचने की चिन्ता भी नहीं, शिक्षा भी नहीं, इच्छा भी नहीं—रहने के लिए भीतर हैं माँ एवं बाहर हैं मामा।

इस अवकाश की मरुभूमि के बीच मेरा हृदय उस समय विश्वव्यापी नारी-रूप की मरीचिका देख रहा था—आकाश में उसकी दृष्टि, वायु में उसका निःश्वास, वृक्षों की मर्मरध्वनि में

उसकी गुप्त बातें ।

इसी समय हरीश ने आकर कहा, "लड़की की यदि कहते हो तो...।" मेरा शरीर-मन वसन्त वायु की वकुलवन की नवपल्लव राशि की भांति काँपता-काँपता धूप-छाया बुनने लगा । हरीश रसिक मनुष्य था, रस भर कर वर्णन करने की शक्ति उसमें थी, और मेरा मन था तृषार्त्त ।

मैंने हरीश से कहा, "एक बार मामा से बात कह कर देखो ।"

हरीश असर जमाने में अद्वितीय है । इसी से सब जगह उसकी खातिर होती है । मामा भी उसे पाकर छोड़ना नहीं चाहते । बात उनकी बैठक में उठी । लड़की की अपेक्षा लड़की के बाप की खबर ही उनके लिए गुरुतर थी । बाप की अवस्था वे जैसी चाहते थे, वैसी ही थी । एक समय उनके वंश में लक्ष्मी का मंगल-घट भरा हुआ था । इस समय उसे शून्य ही कहना पड़ेगा, फिर भी तलहटी में कुछ थोड़ा सा बचा हुआ है । देश में वंश की मर्यादा की रक्षा करते हुए रहना सरल नहीं है, इसीलिए वे पश्चिम में जाकर रहने लगे हैं । वहाँ गरीब गृहस्थ की भाँति ही रहते हैं । एक लड़की छोड़कर उनके और कोई नहीं है । अतः उसके लिए लक्ष्मी के घट को एकदम खाली कर देने में उन्हें द्विविधा नहीं होगी ।

यह सब अच्छी बातें हैं । परन्तु लड़की की आयु पन्द्रह वर्ष की है, यह सुनकर ही मामा का मन भारी हो गया । वंश में तो कोई दोष नहीं है ? नहीं, दोष नहीं है—पिता कहीं भी अपनी लड़की के योग्यवर को ढूँढ़ नहीं पाए । एक तो वरों का बाजार तेज है, उस पर धनुष तोड़ने का प्रण, इसलिए पिता केवल सब्र किए हुए हैं—परन्तु लड़की की आयु सब्र नहीं कर रही ।

जो भी हो, हरीश में सरस-रसना का गुण है । मामा का मन नरम हो गया । विवाह की भूमिका अंश निर्विघ्न समाप्त होगयी । कलकत्ते से बाहर जो पृथ्वी है, उस सबको मामा अण्डाकार द्वीप के अन्तर्गत समझते हैं । जीवन में केवल एक बार वे किसी विशेष काम से किसी शहर तक गए थे । मामा यदि मनु होते तो वे हावड़ा के पुल से पार की हवा को अपनी संहिता में से एक बार निकाल देते । मन में इच्छा थी, अपनी आँखों से लड़की देख आऊँ । परन्तु साहस करके प्रस्ताव नहीं रख पाया ।

कन्या को आशीर्वाद देने के लिए जिसे भेजा गया, वे हमारे बिनूदादा, मेरे फुफेरे भाई थे । उनकी राय, रुचि एवं दक्षता पर मैं सोलहों आना निर्भर रह सकता हूं । बिनूदादा ने लौट आकर कहा, "बुरी नहीं है ! खालिस सोना है ।"

बिनूदादा की भाषा अत्यन्त कसी हुई है । जहाँ हम कहेंगे 'चमत्कारपूर्ण' वहाँ वे कहेंगे 'काम चलाऊ' । अतएव समझ गया, मेरे भाग्य में प्रजापति के साथ कामदेव का कोई विरोध नहीं है ।

२

अधिक क्या कहा जाय विवाह करने के लिए कन्या पक्ष को ही कलकत्ते आना पड़ा । कन्या के पिता शम्भूनाथ बाबू हरीश पर कितना विश्वास करते थे, उसका प्रमाण यही है कि विवाह के तीन दिन पूर्व ही उन्होंने मुझे पहली बार आँखों से देखा एवं आशीर्वाद दे गए । उनकी आयु चालीस के इधर-उधर थी । बाल काले थे, मूँछे कुछ सफेद पड़नी आरम्भ ही हुई थीं । अच्छे आदमी थे । भीड़ में देखने पर सब से पहले उन्हीं के ऊपर दृष्टि पड़ने योग्य चेहरा था ।

आशा करता हूँ, मुझे देखकर वे प्रसन्न हो गए थे। समझना कठिन है, क्योंकि वे बहुत चुप रहा करते थे। जो दो-एक बातें कहते भी उन्हें भी पूरे जोर से नहीं कह पाते थे। मामा के मुख से तब अनर्गल बातें छूटने लगीं---धन में, मान में हम लोगों का स्थान शहर के किसी व्यक्ति से कम नहीं है, इस बात का वे अनेकों प्रसङ्गों में प्रचार करते थे। शम्भू बाबू ने इन बातों में बिलकुल ही योग नहीं दिया—किसी भी तरह एक भी 'हूँ' अथवा 'हाँ' नहीं सुनी गई। मैं होता तो संयम से भी काम लेता। परन्तु मामा को संयम रखना कठिन है। उन्होंने शम्भूनाथ बाबू का मौन प्रभाव देख कर सोचा, यह व्यक्ति एक दम निर्जीव है। एक दम तेज नहीं हैं। समधी सम्प्रदाय में और कुछ भी हो, तेज न रहने का दोष अवश्य है। अत--एव मामा मन ही मन खुश हुए। शम्भूनाथ बाबू जब उठे तब मामा ने संक्षेप में ऊपर से ही उन्हें विदा कर दिया, गाड़ी तक बैठाने को नहीं गए।

दहेज के सम्बन्ध में दोनों ओर से पक्की बात तय होगई थी। मामा स्वयं को असाधारण चतुर समझकर अभिमान में भरे रहते थे। बातचीत में उन्होंने कहीं भी कोई फाँक नहीं रक्खी। रुपयों के अङ्क तो स्थिर थे ही, उसके पश्चात् गहने कितने भारी हों एवं सोना किस मूल्य का हो, इसका भी एक-दम निश्चय कर लिया गया था। मैं स्वयं इन सब बातों के बीच में नहीं था; यह भी नहीं जानता था कि क्या लेन-देन निश्चित हुआ है। मन में जानता था कि यह स्थूल अंश भी विवाह का एक प्रधान अंश है, एवं उस अंश का भार जिनके ऊपर हैं, वे एक कौड़ी भर भी ठगी नहीं करेंगे। वस्तुत, आश्चर्य-जनक पक्के आदमी होने के कारण मामा हमारी सम्पूर्ण गृहस्थी के लिए गर्व की प्रधान वस्तु थे। जहाँ भी हम लोगों का कोई संबंध होगा, वहाँ सर्वत्र

ही वे बुद्धि की लड़ाई में विजय प्राप्त करेंगे, यह एकदम मानी हुई बात थी। इसलिए हम लोगों को अभाव न रहने पर भी एवं दूसरे पक्ष को कठिन अभाव रहते हुए भी जीतेंगे, हमारी गृहस्थी की यही जिद है—इससे चाहे जो बचे, चाहे जो मरे।

शरीर पर हल्दी असम्भवरूप से धूम मचा गई। इतनी सवारियाँ गईं कि उनकी गणना करने के लिए क्लर्क रखना पड़ा। उन्हें विदा करने में दूसरे पक्ष की नाक में नकेल पड़ जाएगी, इस बात को स्मरण कर मामा के साथ मेरी माँ खूब मिलकर हँसी।

बैंड, वंशी, शौकीन कन्सर्ट आदि जहाँ भी जितने प्रकार के अच्छे बाजे थे उन सबको एक साथ मिलाकर बर्बर कोलाहल के मत्त हाथी द्वारा संगीत-सरस्वती के कमल-वन को दलित-विदलित करते हुए मैं विवाह के मण्डप में जा बैठा। अँगूठियों से, हार से, जरी-जवाहरात से मेरा शरीर जैसे गहनों की दूकान बनाकर, नीलाम पर चढ़ाया जा रहा हो, ऐसा लगता था। उन लोगों के भावी-दामाद का मूल्य कितना है, इसे जैसे प्रचुर परिमाण में सर्वांग से स्पष्ट करके लिखता हुआ भावी श्वसुर के साथ मुकाबिला करने चला था।

मामा विवाह-मण्डप में घुसकर प्रसन्न नहीं हुए। एक तो आँगन में बरातियों के लिए बैठने की जगह ही कम थी, उस पर समस्त आयोजन नितान्त मध्यम श्रेणी का था। इससे भी ऊपर शम्भूबाबू का व्यवहार भी निहायत ठण्डा था। उनमें अजस्र विनय नहीं थी। मुँह पर तो बात ही नहीं। कमर में चादर बाँधे, बैठे हुए कण्ठ स्वर वाले, गंजी खोपड़ी, काले रङ्ग एवं विशाल शरीर वाले उनके एक वकील बन्धु यदि भलीभाँति हाथ जोड़ कर, सिर हिलाते हुए, नम्रता पूर्ण स्मितहास्य और गद्गद् वचन द्वारा बाजे वालों की करताल बजाने से आरम्भ

करके वर-पक्ष के कर्त्ताओं में से प्रत्येक को बारम्बार प्रचुररूप से अभिषिक्त न कर देते तो शुरू से ही कुछ इधर-उधर हो जाता ।

मेरे मण्डप में बैठने के कुछ देर बाद ही मामा शम्भूनाथ को बगल वाले घर में बुला ले गए । क्या बातें हुईं, 'पता नहीं; कुछ देर बाद ही शम्भूनाथ बाबू ने आकर मुझ से कहा, "कुँवरजी, एक बार इस ओर आना होगा।'

बात यह थी ।—सब का न हो, परन्तु किसी-किसी मनुष्य के जीवन का कोई लक्ष्य होता है । मामा का एक मात्र लक्ष्य था, वे किसी भी प्रकार किसी के द्वारा नहीं ठगे जा सकते । उन्हें भय था कि उनके समधी ने उन्हें गहनों का भुलावा दे दिया है—विवाह-कार्य समाप्त हो जाने पर उस भुलावे का फिर प्रतिकार नहीं हो सकता । मकान का किराया, सौगात, लोगों की विदा आदि के सम्बन्ध में जिस तरह की खींचतान पाई गई थी, उससे मामा ने निश्चित किया था—देने-खिलाने के सम्बन्ध में यह व्यक्ति केवल मुँह से कही हुई बातों पर ही निर्भर रह कर नहीं चलेगा । इसीलिए वे घर के एक सुनार को भी साथ लाए थे । बगल वाले कमरे में जाकर देखा, मामा एक चौकी पर एवं सुनार अपने काँटे बाँट, कसौटी आदि को लिए हुए मेज पर बैठा था ।

शम्भूनाथ बाबू ने मुझ से कहा, "तुम्हारे मामा कहते हैं कि विवाह का कार्य आरम्भ होने से पहले ही वे लड़की के सब गहने जंचवा कर देखेंगे, इस सम्बस्ध में तुम क्या कहते हो ।"

मैं सिर झुका कर चुप रह गया ।

मामा बोले, "वह क्या कहेगा ? मैं जो कहूंगा, वही होगा ।"

शम्भूनाथ बाबू मेरी ओर देखते हुए बोले, "यही बात है

तो ठीक है ? वे जो कहेंगे, वही होगा। इस सम्बन्ध में तुम्हें कुछ भी नहीं कहना है ?"

मैंने थोड़ी सी गर्दन हिलाकर इशारे में जताया, इन सब बातों में मेरा कोई अधिकार नहीं है।

"अच्छा, तब बैठो, लड़की के शरीर से सब गहने उतारे लाता हूँ" यह कहकर वे उठे।

मामा बोले, "अनुपम यहाँ क्या करेगा। वह मण्डप में जाकर बैठे।"

शम्भूनाथ बोले, "नहीं, मण्डप में नहीं, उसे यहीं बैठना होगा।"

कुछ देर बाद वे एक अँगोछे में गहने बाँध ले आए और चौकी पर रख दिए। वे सब उनकी दादी के समय के गहने थे—आधुनिक फैशन का सूक्ष्म काम नहीं था—जैसे मोटे थे, वैसे ही भारी भी।

सुनार गहनों को हाथ में उठाते हुए बोला, "इन्हें और क्या देखूँ। इनमें टाँका नहीं है—ऐसा सोना आजकल तो व्यवहार में ही नहीं आता।"

यह कहकर उसने मकराकृति के एक मोटे वाले गहने को थोड़ा सा दबाकर दिखाया, वह मुड़ गया।

मामा ने उसी समय अपनी नोट बुक में गहनों की लिस्ट उतार ली, पीछे जब दिखावा हो तब उनमें कोई कम न पड़ जाए। हिसाब लगाकर देखा, गहने जिस परिमाण में देने की बात थी, ये सब संख्या, कीमत एवं वजन में उससे बहुत अधिक थे।

गहनों में एक जोड़ी ईयरिंग थे। शम्भूनाथ ने उन्हें सुनार के हाथ में देते हुए कहा, "इन्हें एक बार परख कर देखो।"

सुनार ने कहा, "यह विलायती माल है, इसमें सोना

थोड़ा ही है ।"

शम्भूबाबू ईयरिंग की जोड़ी मामा के हाथ में देकर बोले, "इन्हें आपने ही दिया है ।"

मामा ने उन्हें हाथ में लेकर देखा, इन ईयरिंगों को देकर ही उन्होंने कन्या को आशीर्वाद देने की रस्म निभाई थी ।

मामा का मुँह लाल हो उठा । दरिद्र उन्हें ठगना चाहेगा, परन्तु वे ठगे नहीं जा सकेंगे, इस आनन्द के उपभोग से वे वंचित हो गए एवं उसके ऊपर भी कुछ और अधिक होगया । मुँह को बहुत भारी बना कर बोले, "अनुपम, जाओ, तुम मण्डप में जाकर बैठो न ।"

शम्भूबाबू ने कहा, "नहीं, अभी मण्डप में बैठना नहीं होगा । चलिए, पहिले आप लोगों को खिला दूँ ।"

मामा बोले, "यह क्या बात ! लग्न—"

शम्भूनाथ बाबू बोले, "उसके लिए कुछ चिन्ता न करें—अब उठें ।"

मनुष्य बहुत भली प्रकृति का है, परन्तु भीतर ही भीतर कुछ अधिक तेजी है, ऐसा जान पड़ा । मामा को उठना पड़ा । बारातियों का भी भोजन होगया । आयोजन में आडम्बर नहीं था । परन्तु, भोजन बहुत अच्छा एवं पूर्णतः अधिक परिष्कार परिच्छन्न होने से सभी तृप्त होगए ।

बारातियों का भोजन समाप्त हो जाने पर शम्भूनाथ बाबू ने मुझसे खाने के लिए कहा । मामा बोले, "यह क्या बात ! विवाह से पहले वर किस तरह खा लेगा ?"

इस सम्बन्ध में मामा की किसी भी राय के प्रकट होने से पूर्व ही वे पूर्णतः उपेक्षा करते हुए मेरी ओर देखकर बोले, "तुम क्या कहते हो । बैठ जाने में कोई दोष है ?"

मूर्त्तिमती—मातृ-आज्ञा के रूप में मामा उपस्थित हैं,

उनके विरुद्ध चलना मेरे लिए असम्भव है। मैं भोजन करने नहीं बैठ सका।

तब शम्भूनाथ बाबू मामा से बोले, आप लोगों को बहुत कष्ट दिया है। हम लोग धनी नहीं हैं, आप लोगों के योग्य आयोजन नहीं कर पाये, क्षमा कीजिएगा। रात होगई है, और आप लोगों का कष्ट बढ़ाने की इच्छा नहीं होती। अब तो—।"

मामा बोले, "तो, मण्डप में चलिए, हम लोग तो तय्यार हैं।"

शम्भूनाथ बोले, "तो आप लोगों की गाड़ियाँ मँगवा दूँ ?"

मामा आश्चर्य में भरकर बोले, "मजाक कर रहे हो क्या ?"

शम्भूनाथ ने कहा, "मजाक तो आपने ही कर डाला है। मजाक के सम्बन्ध को स्थायी करने की इच्छा मेरी नहीं है।"

मामा अपनी दोनों आँखों को फैलाए हुए अवाक् रहगए।

शम्भूनाथ ने कहा, "अपनी कन्या के गहने ही मैं ही चुरा लूँगा यह बात जिन लोगों के मन में आ सकती है, उनके हाथों में, मैं अपनी कन्या नहीं दे सकूंगा।"

मुझसे एक भी बात कहना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा। कारण, सिद्ध होगया था, मैं कुछ भी नहीं हूँ।

उसके बाद जो हुआ, उसे मुझे कहने की इच्छा नहीं होती। 'झाड़-लालटेन तोड़-ताड़ कर, चीज-वस्त खन्ड-बन्ड करके, बारातियों का दल दक्ष-यज्ञ की पुनरावृत्ति कर बाहर निकल पड़ा।

घर लौटते समय बैण्ड, रसन चौकी और कन्सर्ट एक साथ नहीं बजे एवं आकाश के झाड़ों ने अकारण ही नक्षत्रों के ऊपर अपने कर्त्तव्य की आहुति देकर कहाँ जाकर महानिर्वाण प्राप्त

किया, इसका कुछ पता नहीं चला ।

३

घर के सब लोग क्रोध से जल उठे । कन्या का पिता इतना घमण्डी ! कलियुग जैसे चौपाया बनकर आगया है । सभी ने कहा, "देखें, लड़की का विवाह कैसे करेगा ।' परन्तु, लड़की का विवाह नहीं होगा, यह भय जिस के मन में ही नहीं है, उसे दण्ड देने का उपाय ही क्या है ?

सम्पूर्ण बंगाल देश में ही एकमात्र पुरुष था, जिसे कन्या के पिता ने विवाह के मण्डप से स्वयं ही लौटा दिया था । इतने बड़े सत्पात्र के माथे पर इतने बड़े कलंक के दाग को किस दुष्ट-ग्रह ने इतना आलोक प्रकाशित, बाजे बजाकर, समारोह करके, लगा दिया ? बाराती लोग यह कह कर माथा नवाने लगे कि 'विवाह नहीं हुआ तो भी हम लोगों को धोखा देकर खिला दिया—चूल्हे के समस्त अन्न को वहीं ठोकर मारकर फेंक आ सकते तो अफसोस मिट जाता ।'

'विवाह के वचन-भङ्ग एवं मानहानि का दावा करूँगा, कह कर मामा बहुत उपद्रव मचाते हुए घूमने लगे । हितैषियों ने समझा दिया, ऐसा करने पर तमाशा होने में जो बाकी रह गया है, वह भी पूरा हो जाएगा ।

अधिक क्या कहूँ, मैं भी बहुत नाराज हुआ । किसी प्रकार शम्भूनाथ अत्यन्त कातर होकर हम लोगों के पाँव आ पकड़े, मूँछों की रेखाओं पर ताव देते-देते केवल इतनी ही कामना करने लगा ।

परन्तु, इस क्रोध के काले रंग के स्रोत के पास-पास ही एक अन्य स्रोत भी बह रहा था, जिसका रङ्ग बिल्कुल काला नहीं था । सम्पूर्ण मन जैसे उसी अपरिचिता के हाथ में रह

गया था—अब जैसे उसे किसी प्रकार भी खींच कर नहीं लौटाया जा सकता। वह दीवार की आड़ में ही खड़ रही गई थी। उसके ललाट पर चन्दन लगा हुआ था, शरीर पर लाल साड़ी थी, उसके मुख पर लज्जा की लाली थी, हृदय के भीतर क्या था इसे किस तरह कहूँ। मेरे कल्पना-लोक की कल्पलता तो बसन्त के समस्त फूलों का भार मुझ पर न्यौछावर कर देने के लिए झुक पड़ी थी। हवा आई, गन्ध मिली, पत्तों का शब्द सुना—केवल थोड़े से और पाँव फैलाने की प्रतीक्षा थी—इसी समय वह एक पदक्षेप के दूरत्व से एक क्षण में ही असीम हो उठी !

इतने दिनों तक प्रत्येक सन्ध्या को मैंने विनूदादा के घर जाकर उन्हें अस्थिर करते हुए उठा लिया था। विनूदादा के वर्णन की भाषा ने अत्यन्त सङ्कीर्ण बनकर, उनकी प्रत्येक बात ने स्फुलिङ्ग की भाँति मेरे मन के भीतर अग्नि प्रज्ज्वलित करदी थी। समझा था, लड़की का रूप अत्यन्त आश्चर्यजनक है, परन्तु न तो देखा उसे आँखों से, न देखा उसका चित्र, सब कुछ अस्पष्ट रह गया। बाहर से तो वह पकड़ी ही नहीं जा सकी, उसे मन में भी नहीं ला सका—इसलिए मन उस दिन उस विवाह-मण्डप की दीवाल के बाहर भूत की भाँति दीर्घनिःश्वास छोड़कर घूमने लगा था।

हरीश के द्वारा सुना था, लड़की को मेरा फोटोग्राफ दिखाया गया था। पसन्द कर लिया था या नहीं। न करने का तो कोई कारण ही नहीं। मेरा मन कहता है, वह चित्र उसके किसी बक्स के भीतर छिपा रक्खा होगा। अकेले कमरे में दर-वाजा बन्द करके किसी-किसी दिन एकान्त दोपहरी में क्या वह उसे खोल कर नहीं देखती होगी, जब झुककर देखती होगी, उस समय चित्र के ऊपर क्या उसके मुँह के दोनों ओर से लटकते हुए केश नहीं आ गिरते होंगे ! अचानक बाहर किसी का पद-

शब्द सुनते ही क्या वह झटपट अपने सुगन्धित आँचल में चित्र को नहीं छिपा लेती होगी !

दिन बीतते-बीतते एक वर्ष बीत गया । मामा तो लज्जा के मारे विवाह के सम्बन्ध में बात ही नहीं उठा सकते । माँ की इच्छा थी, मेरे अपमान की बात जब समाज के लोग भूल जाएँगे तब विवाह का प्रयत्न करेंगी ।

इधर मैंने सुना उस लड़की के लिए बहुत अच्छा वर मिल गया है, परन्तु उसने प्रण कर लिया है कि वह विवाह नहीं करेगी । सुनकर, मेरा मन पुलक के आवेश से भर गया । मैं कल्पना में देखने लगा, वह अच्छी तरह खाती नहीं है; शाम हो आती है, वह केश बाँधना भूल जाती है । उसका बाप उसके मुँह की ओर देखता है और सोचता है, मेरी लड़की दिन प्रति-दिन ऐसी क्यों होती जा रही है ।' अचानक किसी दिन उसके कमरे में आकर देखता है, लड़की की दोनों आँखों में पानी भर रहा है । पूछता है, 'बेटी, तुझे क्या हुआ है, मुझसे कह ।' लड़की झटपट आँखों का पानी पोंछकर कहती है, 'कहाँ, कुछ भी तो नहीं हुआ पिताजी ।' बाप की एक ही लड़की है—जो बड़े प्रेम में पली है । जब अनावृष्टि के समय फूलों की क्यारी के समान लड़की एकदम विमर्ष हो जाती है, तब बाप के प्राण और नहीं सह पाते उस समय अभिमान त्यागकर वह हम लोगों के दरवाजे पर दौड़ा आया । उसके बाद ? उसके बाद मन के भीतर वही जो काले रंग की धारा बहती थी, वह जैसे काले साँप जैसा रूप धारण कर फुंकार उठी । वह बोली, 'ठीक तो है, फिर एक बार विवाह का मण्डप सजाया जाय, प्रकाश जले, देश-विदेश के लोगों को निमन्त्रण दिया जाय, तत्पश्चात् तुम वर के म्हौर को पाँवों से कुचल कर बारात को लेकर मण्डप छोड़कर चले आना ।' परन्तु, जो धारा आंखों के पानी की

भांति शुभ्र थी, वह राजहंस का रूप धर कर बोली, 'जिस तरह मैं एक दिन दमयन्ती की पुष्पवाटिका में गई थी, उसी प्रकार मुझे एक बार उड़ जाने दो—मैं विरहिणी के कान में चुपचाप एक सुख-सम्वाद पहुँचा आऊँगी।' उसके बाद ? उसके बाद दुख की रात बीत जाएगी, नवीन वर्षा का जल बरसेगा, म्लान-पुष्प प्रस्फुटित होंगे—इस बार उस दीवाल से बाहर रहेंगे, सम्पूर्ण पृथ्वी के और सब लोग, और भीतर प्रवेश करेगा केवल एक पुरुष। उसके बाद ? उसके बाद मेरी बात खत्म हो गई।

———

४

परन्तु, बात इसी तरह समाप्त नहीं होगई। जहाँ आकर वह असमाप्त रह गई, वहाँ का विवरण थोड़ा सा कहकर इस लेख को समाप्त कर दूँगा।

माँ को लेकर तीर्थ-यात्रा पर गया था। मेरे ऊपर ही भार था। कारण, मामा ने इस बार भी हावड़ा का पुल पार नहीं किया। रेलगाड़ी में भ्रमण कर रहा था। झोंके खाते मस्तक में अनेकों प्रकार के इधर-उधर के स्वप्नों की झनझनाहट हो रही थी। अचानक किसी एक स्टेशन पर जाग उठा। प्रकाश से अन्धकार में मिला हुआ वह भी एक स्वप्न था। केवल आकाश के तारे चिरपरिचित थे—और सभी अनजाने अस्पष्ट थे; स्टेशन की कितनी ही बत्तियाँ खड़ी हुई प्रकाश फैलाती हुई, इस पृथ्वी पर कितने अपरिचित हैं एवं जो चारों ओर फैले हैं वे कितने अधिक दूर हैं, इसी को दिखा रहीं थीं। गाड़ी के भीतर माँ सो रही थीं; बत्ती के नीचे हरा पर्दा डाल कर; बिस्तर, बक्स, चीज-वस्त सब कुछ इधर-उधर हिलडुल रहे थे, वे सब जैसे स्वप्नलोक के उलटे-सीधे असबाब, हरे रङ्ग के धुंधले

प्रकाश में स्थिरता एवं अस्थिरता के बीच किसी एक तरह पड़े हुए थे।

इसी समय उस अद्भुत पृथ्वी की अद्भुत रात्रि में कोई बोल उठा—'जल्दी आजाओ, इस डिब्बे में जगह है।'

मन को लगा, जैसे गाना सुना हो। बंगाली लड़की के कण्ठ की बंगला भाषा में कही गई बात कितनी मधुर होती है, इसे ऐसे असमय में, विदेश में चौंकते हुए सुनकर भी पूर्णरूपेण समझा जा सकता है। परन्तु, इस कण्ठ को केवल एक लड़की का कण्ठ कहकर किसी श्रेणी में रख देने से ही काम नहीं चलेगा, यह केवल एक मनुष्य का कण्ठ है; सुनते ही मन कह उठा, 'ऐसा तो कभी सुना नहीं।'

सदैव से कण्ठ स्वर की मुझे बड़ी पहिचान है। रूप नामक वस्तु कुछ कम नहीं है, परन्तु मनुष्यों के भीतर जो अन्तरतम एवं अनिर्वचनीय है, लगता है, कण्ठस्वर जैसे उसीका चेहरा है। मैंने झटपट खिड़की खोल कर बाहर मुँह बढ़ा दिया, गाड़ी के बाहर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। प्लेटफार्म के अंधेरे में खड़े होकर गार्ड ने अपनी एक आँख वाली लालटेन हिलादी, गाड़ी चलदी, मैं खिड़की के पास बैठा रहा। मेरी आँखों के सामने कोई मूर्त्ति नहीं थी, परन्तु हृदय के भीतर मैं एक हृदय का रूप देखने लगा। वह जैसे इसी तारामयी रात के समान था, घेर कर पकड़ने पर भी वह किसी प्रकार पकड़ा नहीं जा सकता। अरे स्वर, अपरिचित कण्ठस्वर, एक पल के लिए तुम मेरे चिर-परिचय के आसन के ऊपर आ बैठो। तुम कैसे आश्चर्य परिपूर्ण हो—चंचल समय के क्षुब्ध हृदय के ऊपर कली की तरह खिल रहे हो, और उसके झोंके खाकर एक पंखुड़ी भी नहीं हिलाते, अपरिमेय कोमलता में जरा भी दाग नहीं पड़ता।

गाड़ी लोहे के मृदङ्ग पर ताल देती-देती चल दी, मैं मन के भीतर गीत सुनते-सुनते चला। उसकी एकमात्र स्थायी थी–'गाड़ी में जगह है।' है क्या, जगह है क्या ? जगह जैसे मिलती नहीं, कोई जैसे किसी को भी पहिचानता नहीं। अतः उस अपरिचिता की जो दुराशा-मात्र है, उसकी जो माया है, उसके छिन्न हुए बिना जैसे पहिचान की समाप्ति नहीं है। जगह है, है—शीघ्र आने के लिए पुकारा, शीघ्र ही आई, एक पल की भी देर नहीं की।

रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई। प्रायः प्रत्येक स्टेशन पर ही एक वार मुँह बढ़ा कर देखा, भय होने लगा, जिससे साक्षात्कार नहीं हो सका, वह कहीं रात में पीछे ही न उतर गई हो।

दूसरे दिन सबेरे एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी बदलनी थी। हमारे पास फर्स्ट-क्लास की टिकिट थी—मन में आशा थी, भीड़ नहीं होगी। उतर कर देखा, प्लेटफार्म पर साहबों के अर्दलियों का झुण्ड असवाब-पत्र लिए गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था। कोई एक फौज के बड़े जनरल साहब भ्रमण करने निकले थे। दो-तीन मिनट बाद ही गाड़ी आगई। समझ गया, फर्स्ट-क्लास की आशा त्यागनी पड़ेगी। माँ को लेकर किस डिब्बे में बैठा जाय, यह एक विषम चिन्ता आ पड़ी। सारी गाड़ी में भीड़ थी। दरवाजे-दरवाजे पर उझकते हुए घूमने लगा। इसी समय सैकेण्ड क्लास में से एक लड़की मेरी माँ को लक्ष्य करते हुए बोली, "आप लोग हमारे डिब्बे में आ जाइए न—यहाँ जगह है।"

मैं तो चौंक उठा। वही आश्चर्यजनक कण्ठ और वही गीत की स्थायी थी—'जगह है।' क्षण भर बिलम्ब किए बिना माँ को लेकर डिब्बे में चढ़ गया। चीज-वस्त उठाने का प्रायः समय ही नहीं रहा था। मेरे जैसा अशक्त दुनियाँ में कोई नहीं

है। उसी लड़की ने कुलियों के हाथ से झटपट चलती हुई गाड़ी में हमारे बिस्तर आदि खींच लिए। मेरा एक फोटोग्राफ खींचने का एक कैमरा स्टेशन पर ही पड़ा रहा—उठा ही नहीं सका।

उसके बाद—क्या लिखूँ नहीं जानता। मेरे मन के भीतर एक अखण्ड आनन्द की तस्वीर है—उसको कहाँ से शुरू करूँ, कहाँ समाप्त करूँ? बैठे-बैठे वाक्य के बाद वाक्यों की योजना करने की इच्छा नहीं होती।

इस बार उस स्वर को आँखों से देखा था। उस समय भी उसे स्वर कहना ही ठीक लगता है। माँ के मुँह की ओर देखा; देखा उनकी आँखों के पलक बन्द नहीं हो रहे हैं। लड़की की आयु सोलह अथवा सत्रह वर्ष की होगी, परन्तु नवयौवन उसके शरीर और मन पर जैसे तनिक भी भार नहीं रख सका था। इसकी गति, सहज, दीप्ति, निर्मल, सौन्दर्य की शुचिता अपूर्व है, इसके किसी भी स्थान पर कोई जड़ता नहीं है।

मैं देख रहा था, विस्तारपूर्वक कुछ कहना मेरे लिए असम्भव था। यही क्यों, वह कौन से रङ्ग का कपड़ा पहने थी, यह भी ठीक से नहीं कह सकता। यह खूब सत्य है कि उसकी वेशभूषा में ऐसा कुछ नहीं था कि जो उसे छोड़कर विशेषरूप से आँखों में पड़ सके। वह अपने चारों ओर सबकी अपेक्षा अधिक थी—रजनीगन्धा की शुभ्र मंजरी की भाँति वृक्ष के ऊपर खड़ी हुई, वे जिस पर खिल रही थी, उस वृक्ष को वह एकदम अतिक्रम कर उठी थी। साथ में दो-तीन छोटी २ लड़कियाँ थीं, उन्हें लेकर उसकी हँसी एवं बातों का कोई अन्त नहीं था। मैं हाथ में एक पुस्तक लेकर उस ओर कान लगाए रहा। जो कान में आ रही थीं, वे सभी बच्चों के साथ की जाने वाली बच्चों जैसी बातें थीं। उनकी विशेषता यही थी कि उनमें आयु की कोई समानता नहीं थी—छोटों के साथ वह अनायस ही एवं आनन्दपूर्वक छोटी बन गई थी। साथ

में कई एक तस्वीरों वाली बच्चों की कहानियों की किताबें थीं–उनमें किसी एक विशेष कहानी को सुनाने के लिए लड़कियाँ उससे हठ करने लगीं। उस कहानी को उन्होंने निश्चित रूप से बीस-पच्चीस बार सुना होगा। लड़कियों का इतना आग्रह किस लिए था। उसे समझ गया। उस सुधा-कण्ठ की स्वर्ण-तीली द्वारा सम्पूर्ण कहानी जैसे स्वर्ण जैसी हो उठती थी। लड़कियों का समस्त शरीर-मन जैसे एकदम प्राणों से भर जाता था, उनकी समस्त अलाय-बलाय के स्पर्श से प्राण धुल जाते थे। इसीलिए लड़कियाँ जब उसके मुँह से कहानी सुनतीं, तब, कहानी नहीं, उसी को सुनतीं; उनके हृदय के ऊपर प्राणों का झरना झरने लगता। उसके वे उद्भासित प्राण मेरे उस दिन की समस्त सूर्य-किरणों को सजीव कर उठे; मुझे लगा, मुझे जिस प्रकृति ने अपने आकाश द्वारा वेष्टित कर रक्खा है, वह इसी तरुणी के अक्लान्त अम्लान प्राणों का विश्वव्यापी विस्तार है।—दूसरे स्टेशन पर पहुँचते ही खाने की चीजें बेचने वाले को पुकार बहुत-सी चनों की पुड़िया खरीद लीं, एवं लड़कियों के साथ मिलकर बिल्कुल बच्चों की तरह कलहास्य करती हुई निस्संकोच खाने लगी। मेरी प्रकृति तो जाल से घिरी हुई है—मैं क्यों अत्यन्त सरलतापूर्वक इस हँसती हुई स्त्री से चनों की एक पुड़िया माँग कर नहीं ले सका। हाथ बढ़ा देने का लोभ मैंने क्यों नहीं स्वीकार कर लिया।

माँ 'अच्छा लगा या बुरा लगा' के बीच दोमना हो रही थीं। गाड़ी में, मैं पुरुष बैठा हुआ हूँ, तो भी इसे तनिक भी संकोच नहीं है, विशेष कर ऐसे लोभी की भाँति खा रही है कि यह उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं लग रहा था, अपितु इसे बेहयाई कहने में उन्हें भ्रम नहीं होता। उन्हें लगा, इस स्त्री की आयु तो बहुत है, परन्तु शिक्षा नहीं हुई है। माँ सहसा किसी के साथ

बात चीत नहीं कर सकती थीं। मनुष्यों के साथ से दूर-दूर रहने का ही उन्हें अभ्यास है। इस स्त्री का परिचय लेने की उन्हें खूब इच्छा थी, परन्तु स्वाभाविक बाधा कट नहीं पा रही थी।

इसी बीच गाड़ी एक बड़े स्टेशन पर आकर ठहरी। उन्हीं जनरल साहब के साथियों का एक दल इस स्टेशन से गाड़ी में चढ़ने का उद्योग कर रहा था। गाड़ी में कहीं भी जगह नहीं थी। बार-बार हमारे ही डिब्बे के सामने से वे लोग देखते हुए निकल गए। माँ भयभीत होगईं, मैं भी अपने मन में शान्ति नहीं पा रहा था।

गाड़ी छूटने के थोड़ी देर पहले ही एक देशी रेलवे कर्मचारी नाम-लिखी दो टिकटों को गाड़ी की दो बेंचों के सिरहाने के पास लटका कर हम लोगों से बोला, "इस डिब्बे की यह दोनों बेंचें पहले से ही दो साहब रिजर्व करा चुके हैं, आप लोगों को दूसरे डिब्बे में जाना होगा।"

मैं तो झटपट घबरा कर उठ खड़ा हुआ। वह स्त्री हिन्दी में बोली "नहीं, हम लोग इस डिब्बे को नहीं छोड़ेंगे।"

उस आदमी ने क्रुद्ध होकर कहा, "छोड़ने के अतिरिक्त और उपाय नहीं है।"

परन्तु, स्त्री के चलने के कोई लक्षण न देखकर वह उतर कर अंग्रेज स्टेशन मास्टर को बुला लाया। उसने आकर मुझसे कहा, " मैं दुखी हूँ, परन्तु—"

सुनकर मैं 'कुली, कुली' करके आवाज देने लगा। वह स्त्री उठकर दोनों आँखों से अग्नि बरसाती हुई बोली, "नहीं, आप नहीं जा सकेंगे, जैसे हैं, बैठे रहिए।"

कहकर वह दरवाजे के पास खड़ी होकर स्टेशन मास्टर से अंग्रेजी भाषा में बोली, " यह डिब्बा पहले से रिजर्व है, यह झूठी बात है।"

कहकर नाम लिखी टिकटों को खोलकर प्लेटफार्म पर फाड़कर फेंक दिया।

इसी बीच अर्दली-सहित यूनीफार्म पहने हुए साहब दरवाजे के पास आ खड़े हुए थे। डिब्बे से उन्होंने अपना सामान उठाने के लिए पहले अर्दली को इशारा किया। तदुपरान्त उस स्त्री के मुँह की ओर देखा, उसकी बात सुनकर, भाव देखकर, स्टेशन मास्टर को स्पर्श किया एवं उसे ओट में ले जाकर क्या बातें कीं, सो नहीं जानता। देखा गया, गाड़ी छूटने का समय निकल जाने पर भी एक और डिब्बा जोड़ कर तभी ट्रेन छोड़ी गई। उस स्त्री ने अपने दलबल को लेकर फिर एक पत्ता चने का खाना शुरू कर दिया, और मैं लज्जा से खिड़की के बाहर मुँह निकाल कर प्रकृति की शोभा को देखने लगा।

कानपुर में गाड़ी आकर ठहरी। वह स्त्री चीज-बस्त बाँधकर तयार थी—स्टेशन पर एक हिन्दुस्तानी नौकर दौड़ते हुए आकर इन लोगों को उतारने का उद्योग करने लगा।

माँ तब और नहीं ठहर सकीं। पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटी।"

स्त्री बोली, "मेरा नाम कल्याणी है।"

सुन कर माँ एवं मैं—दोनों जने चौंक उठे।

"तुम्हारे पिता—"

"वे यहाँ डाक्टर हैं, उनका नाम है शम्भूनाथ सेन।"

उसके बाद सभी उतर गए।

उपसंहार

मामा के निषेध को अमान्यकर, माता की आज्ञा ठुकराकर, उसके बाद मैं कानपुर आया हूँ। कल्याणी के पिता एवं कल्याणी के साथ मुलाकात हुई है। हाथ जोड़े हैं, सिर नवाया है, शम्भूनाथ बाबू का हृदय पिघला है। कल्याणी कहती है, "मैं विवाह नहीं करूँगी।"

मैंने पूछा, 'क्यों ?"

वह बोली, "माँ की आज्ञा है ।"

यह क्या सर्वनाश ! इस ओर भी माया है क्या ।

उसके बाद समझा, मातृभूमि है । उस विवाह के भंग हो जाने के बाद से कल्याणी ने लड़कियों की शिक्षा का व्रत ले लिया है ।

परन्तु, मैं आशा नहीं छोड़ पा रहा हूँ । वह स्वर जो मेरे हृदय में आज भी बज रहा है—वह जैसे कोई उस पार की वंशी—मेरे संसार से बाहर निकलकर समस्त संसार को बाहर से पुकार रही है । और, वह जो रात के अंधेरे में मेरे कान में आई थी, 'जगह है,' वह जैसे मेरे चिरजीवन के गीत की स्थायी बन गई है । उस समय मेरी आयु तेईस वर्ष की थी, अब होगई है सत्ताईस । अब भी आशा नहीं छोड़ी है, परन्तु मामा को छोड़ दिया है । एकदम अकेला लड़का होने के कारण माँ मुझे नहीं छोड़ पाई ।

तुम लोग सोच रहे होगे मैं विवाह की आशा कर रहा हूँ ? नहीं, किसी समय भी नहीं । मेरे मन में है, केवल उसी एक रात के अनजाने कण्ठ के मीठे स्वर की आशा—जगह है । निश्चय ही है । न होने पर खड़ा कहाँ रहूँगा ? इसी से वर्ष के बाद वर्ष बीत रहे हैं—मैं यहीं पर हूँ । मुलाकत होती है, वही कण्ठ सुनता हूँ. जब सुविधा मिलती है उसका काम कर देता हूँ—और मन कहता है, यही जगह तो मिल गई है । अरी ओ अपरिचिता, तुम्हारे परिचय की समाप्ति नहीं हुई, समाप्ति नहीं होगी; परन्तु मेरा भाग्य अच्छा है, तभी तो मैंने जगह पाली है ।

मुक्ति का उपाय

१

फकीरचन्द बचपन से ही गम्भीर प्रकृति का है। वृद्धसमाज में उसे कभी भी कम जंचाऊ नहीं देखा गया। ठण्डा पानी, वरफ और हास्य-परिहास उसे बिल्कुल सहन नहीं होते। एक तो गम्भीर, उस पर सालभर के वीच अधिकांश समय मुखमण्डल के चारों ओर काला ऊनी गुलूबन्द लपेटे रहने से वह भयानक ऊँचे दरजे का आदमी जान पड़ता था। इसके अतिरिक्त, बहुत थोड़ी आयु में ही उसके ओट एवं गण्डस्थल पर घनी दाढ़ी-मूछें उग आने से मरपूर्ण मुख में हंसी निकलने का स्थान तिलभर भी शेष नहीं बचा था।

स्त्री हेमवती की आयु कम है एवं उसका मन सांसारिक विषयों में पूर्ण संलग्न है। वह बंकिम बाबू के उपन्यास पढ़ना चाहती है एवं पति की ठीक देवता की भाँति पूजा करके भी वह तृप्त नहीं हो पाती। वह कुछ हँसी-मजाक पसन्द करती

है, एवं विकासोन्मुखपुष्प जिसतरह वायु के आन्दोलन एवं प्रातः-कालीन प्रकाश के लिए व्याकुल रहता है, वह भी उसी प्रकार इस नवयुवावस्था में पति के द्वारा आदर एवं हँसी-मजाक यथेष्ट परिमाण में पाने की प्रत्याशा करती है। परन्तु, पति उसे अ.-सर पाते ही भागवत् पढ़ाते हैं, सन्ध्या के समय भगवद्गीता सुनाते हैं, एवं आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से कभी-कभी शारी-रिक-शासन करने में भी त्रुटि नहीं करते। जिस दिन हेमवती के तकिये के नीचे से 'कृष्णकान्त का वसीयत नामा' निकला था, उस दिन उक्त लघुप्रकृति की युवती की सम्पूर्ण रात्रि अश्रु-पात करते हुए बीतने के बाद ही फकीरचन्द शान्त हुआ था। एक तो उपन्यास पढ़ना, उस पर पतिदेव की प्रतारणा! जो भी हो, अविश्रान्त आदेश, अनुदेश, उपदेश, धर्मनीति एवं दण्डनीति द्वारा अन्त में हेमवती के मुख की हँसी मन का सुख एवं यौवन का आवेग एकदम निकाल फेंकने में पतिदेवता पूर्णतः कृतकार्य हो गए।

परन्तु, अनासक्त लोगों के लिए संसार में बड़े विघ्न हैं। एक के बाद एक करके फकीरचन्द के एक लड़का और एक लड़की का जन्म होने से गृहस्थी का बन्धन बढ़ गया। पिता की ताड़ना से इतनी बड़ी गम्भीर प्रकृति के फकीरचन्द को भी आफिस-आफिस (अनेक दफ्तरों) में नौकरी की उम्मीदवारी के लिए बाहर घूमना पड़ा, परन्तु काम-काज मिलने की कोई सम्भा-वना दिखाई नहीं दी।

तब उसने मन में सोचा, 'बुद्धदेव की भाँति मैं भी गृहस्थी को त्याग दूँगा।' यह विचार कर एक दिन आधीरात को वह घर छोड़कर बाहर निकल गया।

२

बीच में एक और इतिहास बता देना आवश्यक है ।

नवग्राम वासी षष्ठीचरण का एक लड़का था । नाम था माखनलाल । विवाह के कुछ दिनों बाद ही सन्तान आदि न होने पर पिता के अनुरोध एवं नवीनता के प्रलोभन से उसने एक और ब्याह कर लिया था । इस विवाह के बाद ही क्रमशः उसकी दोनों स्त्रियों के गर्भ से सात लड़कियों और एक लड़के ने जन्म-ग्रहण किया ।

माखनलाल अत्यन्त शौकीन एवं चपल प्रकृति का था, किसी प्रकार के गुरुतर कर्त्तव्य द्वारा बँध जाने पर अत्यन्त नाराज होता था । एक तो बाल-बच्चों का बोझ, उस पर जब दोनों कर्णधार दोनों कानों में झोंका मारने लगे, तब नितान्त असहाय होकर वह भी एक दिन आधीरात में डुबकी लगा गया ।

बहुत दिनों तक उसे फिर नहीं देखा गया । कभी-कभी सुना जाता है, एक विवाह करने में कैसा सुख होता है, इसकी परीक्षा करने के लिए उसने काशी में जाकर गुप्तरूप से एक और विवाह कर लिया है; सुना जाता है, अभागे ने थोड़ी-बहुत शान्ति प्राप्त करली है । केवल अपने देश के आस-पास आने के लिए कभी-कभी उसका मन उतावला होता है, परन्तु पकड़े जाने के भय से आ नहीं पाता ।

३

कुछ दिन घूम-फिर कर उदासीन फकीरचन्द नवग्राम में उपस्थित हुआ । सड़क के किनारे एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर

निःश्वास छोड़ता हुआ बोला, 'आह, वैराग्यमेवाभयम्। दारा (स्त्री), पुत्र, धन, जन कोई किसी का नहीं है। का तव कान्ता कस्ते पुत्रः।" कह कर एक गीत छेड़ दिया—

"सुन रे सुन, अबोध मन।
सुन साधु की उक्ति, होवे मुक्ति
वही सुयुक्ति कर ग्रहण।
भव की शुक्ति तोड़ मुक्ति-मुक्ता कर अन्वेषण।
ओरे ओ भोले मन, भोले मन रे।"

अचानक गीत बन्द हो गया। "वह कौन है ! पिताजी देख रहे हैं ! पता पा लिया शायद ! तब तो सर्वनाश है। फिर ये उसी संसार के अन्धकूप में खींच ले जाएँगे। भागना होगा।"

४

फकीर झटपट एक निकटवर्त्ती घर में घुस गया। वृद्ध गृहस्वामी चुपचाप बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा था। फकीर को घर में घुसते देखकर पूछा, "कौन हो तुम ?"

फकीर—बाबा, मैं सन्यासी हूँ।"

वृद्ध—सन्यासी ! देखूँ, देखूँ बेटा, उजाले में आ देखूँ।"

यह कह कर उजाले में खींच लेजा कर फकीर के मुँह पर झुकते हुए वह वृद्ध मनुष्य बड़े कष्ट से जिस तरह पुस्तक पढ़ी जाती है, उस तरह फकीर के मुँह का निरीक्षण कर बड़-बड़ाता हुआ बकने लगा—

"यह तो हमारा वही माखनलाल दिखाई देता है। वही नाक, वही आँख, केवल माथा बदल गया है, और वही चन्द्रमुख

दाढ़ी-मूँछ से एकदम छिपा रक्खा है ।"

कह कर वृद्ध ने स्नेहपूर्वक फकीर के पसीने से तर मुँह पर दो-एक बार हाथ फेरा एवं प्रकट रूप से कहा, "बेटा-माखन ।"

कहने की आवश्यकता नहीं, वृद्ध का नाम षष्ठीचरण था ।

फकीर (आश्चर्य से)—माखन ! मेरा नाम तो माखन नहीं है । पहले मेरा नाम जो भी हो, इस समय मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है । । इच्छा हो तो परमानन्द भी कह सकते हैं ।

षष्ठी—बेटा, अब तू इस समय अपने को चिड़ेई कह या परमान्नई कह, तू जो मेरा माखन है, बेटा, इसे तो मैं भूल नहीं सकता । बेटा, तू किस दुःख से गृहस्थी को छोड़ गया । तुझे क्या अभाव था । दो स्त्री; बड़ी से प्रेम न करे, छोटी तो है, बालबच्चों का भी दुख: नहीं । शत्रु के मुँह में राख पड़े, सात कन्याएँ, एक लड़का हैं । फिर, मैं बूढ़ा बाप, और कितने दिन जिऊँगा तेरी, गृहस्थी तेरी ही रहेगी ।

फकीर एक बार उकता कर कह उठा, "क्या सत्यानाश है । सुनकर भी तो डर लगता है ।"

इतनी देर में वास्तविक मामला समझ में आगया । सोचा, "बुरा क्या है, दो दिन इस वृद्ध का लड़का बन कर ही इस स्थान पर छिपकर रहा जा सकता है, तदुपरान्त पता लगाने में असफल हो जाने पर पिता के चले जाते ही यहाँ से भाग जाऊँगा ।"

फकीर को निरुत्तर देखकर वृद्ध के मन में और सन्देह नहीं रहा । कृष्णा नौकर को बुला कर कहा, "ओरे ओ कृष्णा, तू सबको खबर दे आरे, मेरा माखन लौट आया है ।"

———

५

देखते-देखते आदमियों की भीड़ लग गई। मुहल्ले के लोगों में से अधिकांश ने कहा, "वही तो है। किसी ने कुछ सन्देह भी प्रकट किया। परन्तु, विश्वास करने के लिए लोग इतने व्यग्र थे कि सन्देह करने वाले लोगों के ऊपर सब गुस्सा होकर चढ़ बैठे। जैसे वे लोग जानबूझ कर रस-भङ्ग करने आए हों; जैसे वे अपने मुहल्ले के चौदह अक्षर के 'पयार-छन्द' को सत्रह अक्षर का बना बैठे हों, किसी प्रकार उन लोगों की कमी हो जाने पर ही मुहल्ले के अन्य सभी लोगों को आराम मिलेगा। वे लोग भूत पर भी विश्वास नहीं करते, ओझा पर भी विश्वास नहीं करते, आश्चर्यजनक कहानी सुनकर जब सब लोग दंग रह जाते हैं, तब भी वे लोग प्रश्न उठा बैठते हैं। उन्हें एक प्रकार से नास्तिक ही कहना चाहिए। परन्तु, भूत पर अविश्वास करें वहाँ तक तो हानि नहीं है, परन्तु उसी कारण बूढ़े बाप के खोए हुए लड़के पर अविश्वास करना तो अत्यन्त हृदय-हीनता का काम है। जो भी हो सब लोगों से फटकार खाकर सन्देह करने वालों का दल चुप रह गया।

फकीर की अत्यन्त भीषण अटल गंभीरता की ओर भ्रू-निक्षेपमात्र भी न करके मुहल्ले के लोग उसे घेर बैठ कर कहने लगे, " अरे अरे, हमारा वही माखन आज ऋषि होगया है—बहुत-सा समय तो यारी में बिताया, आज अचानक महामुनि जमदग्नि हो बैठा है।"

यह बात उन्नतचेता फकीर को अत्यन्त खराब लगी, परन्तु निरुपाय होकर सहन करनी पड़ी। एक व्यक्ति तो शरीर के ऊपर ही बैठता हुआ पूछने लगा, "ओरे माखन, तू तो एकदम काला था, रङ्ग को इतना गोरा किस तरह बना लिया ?"

फकीर ने उत्तर दिया, "योगाभ्यास से।"

सब लोग बोले, "योग का कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव है !"

एक व्यक्ति ने उत्तर देते हुए कहा, "आश्चर्य की क्या बात है। शास्त्र है, भीम जब हनुमान की पूँछ पकड़ कर उठाने गए तो किसी तरह भी नहीं उठा पाए। वह किस तरह हुआ। वह भी योगबल से हुआ।"

यह बात सभी को स्वीकार करनी पड़ी।

इतने में षष्ठीचरण ने आकर फकीर से कहा, "बेटा ! एक बार घर के भीतर जाना होगा।"

यह सम्भावना अभी फकीर के मस्तिष्क में उदय नहीं हुई थी—अचानक वज्रपात की भाँति मस्तिष्क में घुसी। बहुत देर चुप रहकर, मुहल्ले के लोगों का अत्यन्त अन्यायपूर्ण परिहास हजम करके अन्त में बोला "बच्चा, मैं सन्यासी हो चुका हूँ, मैं अन्तःपुर में नहीं घुस सकूँगा।"

षष्ठीचरण ने मुहल्ले के लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा, "तब तो आप लोगों को ही एकबार तकलीफ उठानी पड़ेगी। बहुओं को यहीं लिए आता हूँ। वे दोनों बड़ी व्याकुल हो रही हैं।"

सब लोग चले गए। फकीर ने सोचा, इसी समय यहाँ से एक दौड़ लगाऊँ। परन्तु रास्ते में बाहर निकलते ही मुहल्ले के लोग कुत्तों की भाँति उसके पीछे दौड़ेंगे, यह कल्पना करके उसे चुपचाप बैठे रहना पड़ा।

जैसे ही माखनलाल की दोनों स्त्रियों ने प्रवेश किया, फकीर ने वैसे ही सिर नीचा करके उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "माँ, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ।"

तभी फकीर की नाक के सामने एक कंगन पहिने हुए हाथ तलवार की भाँति खेल गया एवं एक फूटे कांसे जैसा कण्ठ बज

उठा, "अरे ओ करमफोड़ मर्द, तूने माँ किससे कहा !"

ऐसे ही एक दूसरा कण्ठ और भी दूने ऊँचे स्वर से मौहल्ले को कँपाता हुआ झंकार दे उठा, "आँखें फाड़े बैठा है! तुझे मौत नहीं आती।"

अपनी स्त्री द्वारा ऐसी चालू बँगला भाषा सुनने का अभ्यास नहीं था, अस्तु एकदम कातर होकर फकीर ने हाथ जोड़ कर कहा, "आपको गलतफ़हमी हुई है। मैं इस उजाले में खड़ा होता हूँ, मुझे जरा गौर से देखिए।"

पहिली और दूसरी ने एक के बाद एक करके कहा, "खूब देखा है। देखते-देखते आँखें फूट गई। तुम नन्हें बच्चे नहीं हो। आज नये ही पैदा नहीं हुए हो। तुम्हारे दूध के दाँत बहुत पहिले टूट चुके हैं। तुम्हारी आयु के पेड़-पत्थर भी नहीं रहे। तुम्हें यमराज भूल गए हैं, कहते क्या हो, हम भूल जाएँगी।"

इस तरह इकतरफा दाम्पत्य-अलाप कब तक चला, कहा नहीं जा सकता—कारण फ़कीर एकदम वाक्-शक्ति-विहीन हो सिर नीचा किए खड़ा हुआ था। इसी समय अत्यन्त कोलाहल सुनकर एवं राह में लोगों को इकट्ठा होते हुए देखकर षष्ठीचरण ने प्रवेश किया।

कहा, "इतने दिनों तक मेरा घर खामोश था, एकदम कोई शब्द ही नहीं होता था। आज मन को लग रहा है कि हमारा माखन लौट आया है।"

फकीर ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाशय, अपनी पुत्र-वधुओं के हाथ से मेरी रक्षा कीजिए।"

षष्ठी—बेटा, बहुत दिनों बाद आए हो, इसीलिए पहले कुछ असह्य लगरहा है। अच्छा, बहुओ, तुम लोग इस समय जाओ। बेटा माखन तो अब यहीं पर रहेगा, इसे फिर किसी तरह जाने नहीं दूँगा।

दोनों ललनाओं के विदा हो जाने पर फकीर ने षष्ठी-चरण से कहा, "महाशय, आपका पुत्र क्यों गृहस्थी को छोड़ गया, उसे मैंने पूर्णरूपेण अनुभव कर लिया है । महाशय, मेरा प्रणाम लीजिए, मैं चल दिया ।"

वृद्ध ने ऐसे ऊँचे स्वर से रोना आरम्भ कर दिया कि मुहल्ले के लोगों ने मनमें सोचा कि माखन ने अपने बाप को मारा है । वे लोग हाँ-हाँ करते हुए दौड़े आए । सबने आकर फकीर को जता दिया, इस तरह का पाखण्ड यहाँ नहीं चलेगा । भले आदमी के लड़के की तरह समय बिताना पड़ेगा । एक आदमी ने कहा, "ये परमहंस नहीं हैं । परमबक (बगुला भगत) हैं ।"

गम्भीरता, दाढ़ी-मूँछ एवं गुलूबन्द के जोर से फकीर को ऐसी सब कुत्सित-बातें कभी नहीं सुननी पड़ी थीं । जो भी हो, यह कहीं फिर न भाग जाय, इस संबंध में मुहल्ले के लोग अत्यन्त सतर्क होगए । स्वयं ज़मीदार ने भी षष्टीचरण का पक्ष लिया ।

———

६

फकीर ने देखा ऐसा कड़ा पहरा हैं कि मृत्यु हुए बिना ये लोग घर से बाहर नहीं निकालेंगे । अकेले घर में बैठा हुआ गीत गाने लगा—

सुन साधु की उक्ति, होवे मुक्ति
वही सुयुक्ति कर ग्रहण ।

अधिक क्या कहें, गीत का आध्यात्मिक अर्थ बहुत कुछ क्षीण हो चला था ।

इस तरह भी किसी प्रकार दिन कट जाते । परन्तु,

माखन के आगमन का सम्वाद पाकर दोनों स्त्रियों के संबंध के साले और सालियों का एक झुण्ड आ उपस्थित हुआ।

वे लोग आते ही सबसे पहले फकीर की दाढ़ी पकड़ कर खींचने लगे—वे सब बोले, यह तो असली दाढ़ी-मूँछें नहीं है, छद्म वेष बनाने के लिए गोंद से चिपकाली हैं।

नाक के नीचे की मूंछें पकड़ कर खींचतान करने पर फकीर की अपेक्षा अत्यन्त महान्, लोगों को भी अपने माहात्म्य की रक्षा करना अत्यंन्त दुष्कर हो उठता है। इसके अतिरिक्त कान के ऊपर भी उपद्रव था—पहले तो चले गए, दूसरे ऐसी सब बातों का प्रयोग किया गया, जिनसे कान न मले जाने पर भी कान लाल हो उठें।

इसके पश्चात् फकीर को वे ऐसे सब गीत सुनाने लगे कि आधुनिक बड़े बड़े नवीन पण्डित भी उनकी किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक व्याख्या करने में हार मान बैठें। फिर, सोते समय उन्होंने फकीर के बचे-खुचे गालों पर चूना और स्याही पोत दी; भोजन के समय कसेरू के बदले अरवी, डाब के पानी के बदले हुक्के का पानी, दूध के बदले पीठी का धोवन देने की तय्यारी करदी; पीढ़े के नीचे सुपारी रख कर उसे पछाड़ खिलादी, पूँछ बनाई एवं सहस्रों प्रचलित उपायों से फकीर के आकाश-भेदी गाम्भीर्य्य को भूमिसात् कर दिया।

फकीर नाराज होकर, लाल-पीला होकर, झुँझला-चिल्लाकर, किसी भी तरह उपद्रवकारियों के मन में भय का संचार नहीं कर पाया। केवल सर्वसाधारण के निकट और अधिक हास्यास्पद होने लगा। इससे भी ऊपर फिर अन्तःपुर में से एक मधुर कण्ठ का उच्चहास भी बीच-बीच में सुनाई पड़ता। वह कण्ठस्वर जैसे परिचित हो, इस नाते उसका मन

दूना अधीर हो उठा ।

परिचित कण्ठ पाठकों से अपरिचित नहीं है । इतना ही कह देना यथेष्ट होगा कि षष्ठीचरण किसी एक सम्बन्ध से हेमवती के मामा होते हैं । विवाह के पश्चात् सास द्वारा अत्यन्त सताई जाने पर पितृ-मातृहीना हेमवती बीच-बीच में किसी-न-किसी कुटुम्बी के मकान में आश्रय लेने पहुँच जाती है । बहुत दिनों बाद वह मामा के घर में आकर नेपथ्य में से एक परम कौतूहलकारक अभिनय का निरीक्षण कर रही है । उस समय हेमवती की स्वभाविक हास्य-प्रियता के साथ प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति का भी उद्रेक हुआ था या नहीं, इसे चरित्रतत्त्वज्ञ विद्वान् ही स्थिर करेंगे, हम कहने में असमर्थ हैं ।

हँसी-मजाक के रिश्तेवाले लोग तो बीच-बीच में विश्राम भी करते हैं, परन्तु स्नेह के रिश्तेवाले लोगों के हाथ से छुटकारा पाना कठिन है । सात लड़कियाँ एवं एक लड़का उसे एक पल भी नहीं छोड़ते । पिता के स्नेह पर अधिकार करने के लिए उनकी माताओं ने उन्हें हर घड़ी के लिए नियुक्त कर रक्खा था । दोनों माताओं में अनबन भी थी, दोनों का यही प्रयत्न रहता था कि उनकी सन्तान ही अधिक आदर प्राप्त करें । दोनों ही अपनी-अपनी सन्तानों को सदैव उत्तेजित करने लगीं—दोनों दल मिल कर पिता के गले को जकड़ते हुए पकड़ कर, गोद में बैठकर, मुँह चूम कर तथा अन्य प्रबल स्नेहपूर्ण कार्य करके परस्पर जीतने की चेष्टा करने लगे ।

कहने की आवश्यकता नहीं, फकीर अत्यन्त निर्लिप्त-स्वभाव का व्यक्ति है, अन्यथा अपनी सन्तानों को ही छोड़ कर वह आ नहीं सकता था । बालक भक्ति करना नहीं जानते, वे लोग साधु‌त्व के समीप अभिभूत हो जाना नहीं सीखे, इसीलए

फकीर शिशु-जाति के प्रति तिलमात्र भी अनुरक्त नहीं था; इसलिए उन्हें कीट-पतंगों की भाँति अपने शरीर से दूर ही रखने की इच्छा करता था । अस्तु वह हर समय शिशु-टिड्डियों से आच्छन्ना होकर, बारीक अक्षरों के छोटे-बड़े नोटस् द्वारा प्रारम्भ से अन्त तक भरे हुए ऐतिहासिक ग्रन्थ की भाँति शोभायमान हो गया । उनके बीच आयु का बड़ा तारतम्य था और वे सभी उसके साथ कुछ वयःप्राप्त सभाजनोचित व्यवहार नहीं करते थे; शुद्ध-पवित्र फकीर की आँखों से बहुत बार आँसुओं का संचार हो उठता और वे आनन्द के आँसू नहीं होते ।

दूसरे के लड़के जिस समय अनेकों स्वर में उसे 'पिताजी, पिताजी' पुकारते हुए आदर करते, उस समय उसे सांघातिक-पाशविक-शक्ति प्रयोग करने की एकदम इच्छा होती, परन्तु भय से कर नहीं पाता । मुँह-आँख विकृत करके चुपचाप बैठा रहता ।

७

अन्त में फकीर अत्यन्त हो-हल्ला मचाकर कहने लगा, "मैं जाऊँगा, देखूँ मुझे कौन रोक कर रख सकता है ?"

तब गाँव के लोगों ने एक वकील लाकर उपस्थित कर दिया । वकील ने आकर कहा, "जानते हो आपके दो स्त्रियाँ हैं ?"

फकीर—जी, यहाँ आकर पहिली बार ही जाना है ।

वकील—और, आपके सात लड़की, एक लड़का है, जिनमें दो लड़कियाँ विवाह योग्य हैं ।

फकीर—जी, आप मेरी अपेक्षा कहीं अधिक जानते हैं,

यह देख रहा हूँ ।

वकील—अपने इस बड़े परिवार के भरण-पोषण का भार आप यदि नहीं लेंगे, तो आपकी अनाथिनी दोनों स्त्रियाँ अदालत की शरण ग्रहण करेंगी, यह पहले से ही कहे देता हूँ ।

फकीर सब की अपेक्षा अदालत से डरता था । वह जानता था, वकील लोग जिरह करने के समय महापुरुषों की मान-मर्यादा की गम्भीरता का खयाल नहीं करते, प्रकटरूप में अपमान करते हैं, एवं अखबारों में उसकी रिपोर्ट छपती है । फकीर ने अश्रुसिक्त लोचनों से वकील को विस्तृत आत्म-परिचय देने की चेष्टा की—वकील उसकी चातुरी, उसकी प्रत्युत्पन्ना-मति, उसकी मिथ्या-गल्प-रचना की असाधारण क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा । सुनकर फकीर अपने हाथ-पाँवों को नोंच-खाने की इच्छा करने लगा ।

षष्ठीचरण फकीर को दुबारा भाग जाने के लिए तय्यार देखकर शोक से अधीर हो उठे । मुहल्ले के लोगों ने उसे चारों ओर से घेर कर अनगिनती गालियाँ दीं, एवं वकील ने उसे ऐसा धमकाया कि उसके मुँह में कोई बात न रही ।

इसके अतिरिक्त जब आठ बालक-बालिकाओं ने प्रगाढ़-स्नेह से उसे चारों ओर से आलिंगन कर पकड़ते हुए, उसकी साँस रोक देने का प्रयत्न किया, उस समय अन्तरालस्थित हेमवती हँसे या रोये—कुछ सोच नहीं पाई ।

फकीर ने अन्य उपाय न देखकर इस बीच अपने पिता को एक चिट्ठी लिखकर सम्पूर्ण अवस्था निवेदन करदी थी । उस पत्र को पाकर फकीर के पिता हरिचरण बाबू आ उपस्थित हुए । परन्तु मुहल्ले के लोग, जमीदार एवं वकील ने किसी भी प्रकार अपना दखल नहीं छोड़ा ।

यह व्यक्ति फकीर नहीं है, माखन है, इस सम्बन्ध में

उन्होंने सहस्त्रों अकाट्य-प्रमाण प्रयुक्त किए—इतना ही क्यों, जिस धाय ने माखन को पाला-पोसा था, उस वृद्धा को लाकर भी हाजिर कर दिया । वह काँपते हुए हाथों से फकीर की ठोड़ी उठाकर मुँह देखते हुए, उसकी दाढ़ी के ऊपर हृदय-विदारक धारा से आँसू बहाने लगी ।

जब देखा कि फकीर इससे भी बस में नहीं आ रहा, तब घूँघट काढ़ कर दोनों स्त्रियां आ उपस्थित हुईं । मुहल्ले के लोग अचकचा कर घर से बाहर चले गए । केवल दोनों स्त्रियाँ, बाप, फकीर एवं बच्चे घर में रहे ।

दोनों स्त्री हाथ हिला-हिलाकर फकीर से पूछने लगीं, "किस चूल्हे में, यमराज के कौन-से दरवाजे में जाने की इच्छा हो रही है ?"

फकीर उन्हें निर्दिष्ट करके बोल नहीं सका, अस्तु निरुत्तर बना रहा । परन्तु भावों से जो प्रकट हुआ, उनसे यमराज के किसी विशेष द्वार के प्रति उसका कोई विशेष पक्षपात हो, ऐसा नहीं लगा, फिलहाल वह किसी भी एक द्वार की शरण पा लेने पर ही बच सकता था, केवल एक बार बाहर निकल जाने भर की जरूरत है ।

तभी एक अन्य स्त्री-मूर्त्ति ने घर में प्रवेश करके फकीर को प्रणाम किया ।

फकीर पहले अवाक्, तदुपरान्त आनन्द से उत्फुल्ल हो कर कह कठा, "यह तो हेमवती है ।"

अपनी अथवा दूसरे की स्त्री को देखकर इतना प्रेम उसकी आँखों में अब से पहले कभी प्रकट नहीं हुआ था । लगा, मूर्त्तिमती मुक्ति स्वयं आ उपस्थित हुई है ।

एक अन्य व्यक्ति भी मुँह के ऊपर दुशाला ओढ़े, अन्तराल से यह सब देख रहा था । उसका नाम माखनलाल था । एक

अपरिचित निरीह व्यक्ति को अपने पद पर अभिषिक्त देख कर वह अब तक अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहा था, अन्त में हेमवती को उपस्थित देख कर समझ गया, उक्त निरपराध व्यक्ति उसके अपने ही बहनोई हैं, तब दया के वशीभूत होकर घर में घुसता हुआ बोला, "नहीं, अपने ही आदमी को ऐसी विपत्ति में डालना महापाप है।" फिर दोनों स्त्रियों की ओर उँगली उठाते हुए कहा, "यह मेरी ही रस्सियाँ हैं, मेरी ही कलशी हैं।" ×

माखनलाल के इस असाधारण महत्व और वीरत्व से मुहल्ले के लोग आश्चर्यचकित रह गए।

× बंगाल मे आत्महत्या करने के लिए गले में रस्सी अथवा कलशी को बाँधा जाता है। माखनलाल के कहने का अभिप्राय यह था कि इस केद्वारा ही मैं आत्महत्या करूँगा।

जीवित और मृत

प्रथम परिच्छेद

रानीहट के जमीदार शारदाशंकर बाबू के घर की विधवा-बहू के पितृकुल में कोई नहीं था, सभी एक-एक करके मर गए थे। पतिकुल में भी ठीक अपना कहने को कोई नहीं है, पति भी नहीं, पुत्र भी नहीं। एक जेठ का लड़का है, शारदाशंकर का छोटा लड़का, वही उसकी आँखों का तारा है। उसके जन्म के पश्चात् उसकी माता बहुत समय तक सख्त बीमार रही थी, अतः इस विधवा चाची कादम्बिनी को ही उसे पालना-पोसना पड़ा। दूसरे के लड़के का पालन-पोषण करने में उसके प्रति प्राणों का खिंचाव जैसे और भी अधिक हो जाता है, कारण, उसके ऊपर अधिकार नहीं रहता, उसके ऊपर कोई सामाजिक दावा नहीं होता, केवल स्नेह का दावा होता है—परन्तु मात्र स्नेह समाज के सामने अपना दावा किसी दलील के अनुसार प्रमाणित नहीं कर पाता एवं चाहता भी नहीं, केवल अनिश्चित प्राणों के धन को दूनी व्याकुलता के साथ

प्यार करता है।

विधवा के सम्पूर्ण अवरुद्ध स्नेह को इस बालक के प्रति सींच कर एक दिन श्रावण मास की रात में कादम्बिनी की मृत्यु होगई। अचानक न जाने किस कारण से उसके हृदय की धड़कन बन्द हो गई—संसार में समय और सब जगह ज्यों का त्यों चलता रहा, केवल उस स्नेह कातर क्षुद्र हृदय के भीतर समय की घड़ी की मशीन जैसे सदैव के लिए बन्द होगई।

पीछे पुलिस का उपद्रव न हो, इस कारण अधिक आडम्बर न करके ज़मींदार के चार ब्राह्मण कर्मचारी बहुत जल्दी ही मृत-देह का दाह-संस्कार करने को ले गए।

रानीघाट का श्मसान गाँव से बहुत दूर है। तालाब के किनारे एक झोंपड़ी है एवं उसके समीप ही एक बड़ा बटवृक्ष है एवं विशाल मैदान है, और कहीं कुछ भी नहीं है। पहले यहाँ होकर नदी बहती थी, अब नदी एकदम सूख गई है। उस शुष्क जल-मार्ग का एक भाग खोदकर श्मसान का तालाब बनाया गया है। यहाँ के लोग इस तालाब को ही पवित्र स्रोतस्विनी के प्रति-निधि रूप में समझते हैं।

मृत-शरीर को झोंपड़ी में रखकर चिता के लिए लकड़ी आने की प्रतीक्षा में चारों व्यक्ति बैठे रहे। समय इतना लम्बा लगने लगा कि अधीर होकर उन चारों लोगों में निताई एवं गुरु-चरण—लकड़ी आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है, यह देखने को चले गए, विधु एवं वनमाली मृत-देह की रक्षा करते हुए बैठे रहे।

सावन की अँधेरी रात। रह-रह कर बादल घिरे आ रहे हैं, आकाश में एक भी नक्षत्र दिखाई नहीं देता, अँधेरे घर में दोनों व्यक्ति चुपचाप बैठे रहे। एक व्यक्ति की चादर में दिया-सलाई और मोमबत्ती बँध रही थी। बरसात के दिनों की दिया-सलाई बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं जली—जो लालटेन संग थी,

वह भी बुझ गई थी ।

बहुत देर तक चुप बैठे रहने के बाद एक व्यक्ति ने कहा, "भाई रे, एक चिलम तम्बाकू का जुगाड़ होता तो बड़ी सुविधा रहती । जल्दबाजी में कुछ भी नहीं लाया जा सका ।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा, "मैं झट से एक ही दौड़ में सब चीजें इकट्ठी करके ला सकता हूँ ।"

बनमाली का भागने का इरादा समझ कर विधु ने कहा, "भैया रे ! और मैं शायद यहाँ अकेला बैठा रहूँगा ।"

फिर बातचीत बन्द होगई । पाँच मिनट मन को एक घंटे जैसी लगने लगीं । जो लोग लकड़ी लाने गए थे, उन्हें ये लोग मन ही मन गाली देने लगे—वे लोग जैसे बड़े आराम से कहीं बैठे हुए गप्पें हाँकते हुए तम्बाकू पी रहे होंगे, यह सन्देह क्रमशः उनके मनमें घनीभूत होकर उठने लगा ।

कहीं भी कोई शब्द नहीं—केवल तालाब के किनारे से अविश्राम रूप से झिल्ली एवं मेढ़कों की आवाज सुनाई दे रही थी । इसी समय मन को लगा, जैसे खाट कुछ हिली, जैसे मृत-देह करवट बदल कर सोगई ।

विधु एवं वनमाली रामनाम जपते-जपते काँपने लगे । अचानक घर के भीतर एक दीर्घ निःश्वास सुनाई पड़ा । विधु एवं वनमाली ने एक क्षण में ही घर के भीतर से उछल कर बाहर निकलते हुए गाँव की ओर दौड़ लगादी ।

प्रायः डेढ़ कोस राह निकल जाने पर देखा, उनके दोनों साथी हाथ में लालटेन लिए लौटे आ रहे हैं । वे लोग सचमुच ही तम्बाकू पीने गए थे, लकड़ी के बारे में उन्हें कोई पता नहीं था, तो भी समाचार दिया, पेड़ काट कर लकड़ी फाड़ी जा रही है—थोड़ी ही देर में रवाना होगी । तब विधु एवं वनमाली ने झोंपड़ी की सम्पूर्ण घटना का वर्णन किया । निताई एवं

गुरुचरण ने अविश्वास करते हुए उसे उड़ा दिया एवं कर्त्तव्य छोड़ कर चले आने के लिए उन दोनों व्यक्तियों के ऊपर अत्यन्त नाराज़ होते हुए बड़ी भर्त्सना करने लगे।

समय बिताए बिना ही चारों व्यक्ति श्मसान की उसी झोंपड़ी में जा उपस्थित हुए। भीतर घुस कर देखा मृतदेह नहीं है, खाट सूनी पड़ी हुई है।

परस्पर मुँह ताकने लगे। यदि सियार ले गए हों ? परन्तु कफन का कपड़ा तक नहीं। खोज करते-करते बाहर जाकर देखा, झोंपड़ी के दरवाजे पर थोड़ी कीचड़ जम रही थी, उस पर किसी स्त्री के तुरन्त के एवं छोटे पद-चिन्ह बने हुए थे।

शारदाशङ्कर साधारण व्यक्ति नहीं हैं, उनसे यह भूत की कहानी कहने पर किसी तरह का शुभपरिणाम निकलने की सम्भावना नहीं। तब चारों व्यक्तियों ने बहुत कुछ विचार करके यह निश्चित किया कि, दाहकर्म सम्पन्न होगया, उन्हें ऐसी खबर देना ही ठीक है।

सबेरे के समय जो लोग लकड़ी लेकर आए, उन्हें समाचार मिला, देर होती देखकर पहले ही कार्य समाप्त कर दिया गया है, झोंपड़ी के भीतर लकड़ी रक्खी हुई थी। इस सम्बन्ध में किसी को भी आसानी से सन्देह नहीं हो सकता था—कारण मृत-देह ऐसी कोई बहुमूल्य सम्पत्ति नहीं थी कि जिसे कोई धोखा देकर चोरी करके ले जाए।

द्वितीय परिच्छेद

सभी जानते हैं, जीवन का जिस समय कोई लक्षण नहीं पाया जाता, उस समय भी बहुत बार जीवन प्रच्छन्न रूप से मौजूद रहता है, एवं समयानुसार दुबारा मृतवत् शरीर में उसका कार्य आरम्भ हो जाता है। कादम्बिनी भी मरी नहीं थी—

अचानक किसी कारण से उसकी जीवन-क्रिया बन्द हो गई थी।

जब वह चैतन्य होकर उठी तो देखा चारों ओर घना अंधेरा था। सदैव के अभ्यासानुसार जिस जगह शयन करती थी, ज्ञात हुआ यह वह जगह नहीं है। एक बार पुकारा 'दीदी'— अन्धेरे घर में किसी ने उत्तर नहीं दिया। भयभीत होकर उठ बैठी, याद आ गई उस मृत्यु-शय्या की बात। वही अचानक हृदय के समीप एक वेदना-श्वास रुकने का उपक्रम। उसकी बड़ी जिठानी घर के एक कोने में बैठी चूल्हे के ऊपर लड़के के लिए दूध गरम कर रही थी—रुद्ध कण्ठ से कहा था, 'दीदी, एक बार बच्चे को ले आओ, मेरे प्राण न जाने कैसे हो रहे हैं।" उसके बाद सबकुछ अंधकारपूर्ण हो आया—जैसे एक लिखी हुई कापी पर स्याही-भरी पूरी दावात उलट पड़ी हो— कादम्बिनी की सम्पूर्ण स्मृति एवं चेतना, विश्व-ग्रन्थ के संपूर्ण अक्षर एक पल में ही एकाकार हो गए। लड़के ने एकबार अपने उस सुमधुर स्नेहपूर्ण स्वर में 'चाची' कह कर पुकारा या नहीं, उसकी अनन्त-अज्ञात मृत्यु-यात्रा के पथ पर चिरपरिचित पृथ्वी से इस अन्तिम स्नेहरूपी पाथेय को संग्रह करके लाया गया या नहीं, विधवा को यह भी याद नहीं रहा।

पहले मन को लगा, यमलोक शायद ऐसा ही चिर-निर्जन एवं चिर-अंधकारपूर्ण है। वहाँ दिखाई पड़ने को कुछ भी नहीं है। सुनाई देने को कुछ भी नहीं है, केवल चिरकाल तक इसी प्रकार जागकर अँधेरे में बैठे रहना पड़ेगा।

तदुपरान्त जब खुले हुए दरवाजे से अचानक एक ठण्डी बरसाती-हवा का झौंका आया एवं बरसाती मेढ़कों की पुकार कान में पड़ी, तब एक पल में ही अपने इस छोटे-से जीवन की बचपन तक; की सभी बर्षा-ऋतुओं की स्मृति घनीभूत होकर उसके मन में उदय हो उठीं एवं पृथ्वी के निकट-संस्पर्श

को वह अनुभव कर उठी । एक बार बिजली चमक उठी; सामने का तालाब, वट वृक्ष, विस्तृत मैदान दूरवर्त्ती वृक्षों की पंक्ति एक पल के लिए दिखाई दी । याद आया, कभी-कभी पुण्य तिथि के उपलक्ष में इसी तालाब पर आकर स्नान किया है एवं याद आया, उसी समय इस श्मशान में किसी मृतदेह को देखकर मृत्यु कैसी भयानक लगती थी ।

पहले तो मन हुआ, घर लौट चलें । परन्तु तभी सोचा, 'मैं तो जीवित नहीं हूँ, मुझे घर में घुसने कौन देगा ! वहां अमङ्गल जो हो जाएगा । जीव-राज्य से जैसे मैं निर्वासित होकर आई हूँ—मैं जैसे अपनी प्रेतात्मा हूँ ।'

यदि यह न होता तो वह आधीरात में शारदाशङ्कर के सुरक्षित अन्त:पुर में से इस दुर्गम श्मशान में कैसे आजाती । इस समय भी यदि उसका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ है तो दाह देने वाले लोग कहाँ चले गए ? शारदाशङ्कर के आलोकित घर में उसे अपनी मृत्यु का अन्तिम क्षण याद आया, उसके बाद ही इस अत्यन्त दूरवर्ती जनशून्य अन्धकारमय श्मशान में अपने को अकेली देख कर उसने समझा, 'मैं इस पृथ्वी के जन-समाज की अब कोई नहीं हूँ--मैं अत्यन्त भीषण हूँ, अकल्याणकारिणी हूँ, मैं अपनी प्रेतात्मा हूँ ।'

यह बात मन में उत्पन्न होने मात्र से ही उसे लगा, उसके चारों ओर विश्व-विनिमय के समस्त बन्धन जैसे टूट गए हैं । जैसे उसे अद्भुत शक्ति, असीम स्वाधीनता मिल गई है—जहाँ भी इच्छा हो, वहीं वह जा सकती है, वह जो भी इच्छा हो, वही कर सकती है । इस अभूतपूर्व नवीन भाव के आविर्भाव से वह उन्मत्त जैसी होकर अचानक एक आँधी की भाँति घर से बाहर निकल कर अंधेरे श्मशान के ऊपर होती हुई चलदी--मन में लज्जा, भय, चिंता लेशमात्र भी

नहीं रही ।

चलते-चलते पाँव दुख गए, शरीर अशक्त होने लगा, मैदान के बाद मैदान समाप्त नहीं हो सका—बीच-बीच में धान के खेत थे, कहीं-कहीं एक घुटनेभर पानी भी भरा हुआ था । जब प्रातःकालीन प्रकाश कुछ-कुछ दिखाई दिया, तब समीप ही गाँव की बाँस की झाड़ियों में से दो-एक पक्षियों का चहचहाना सुनाई पड़ा ।

तब वह कैसे डरने लगी ? पृथ्वी के साथ, जीवित मनुष्यों के साथ अब उसका कैसा नया सम्बन्ध होगया है, इसे वह बिल्कुल नहीं जानती । जबतक मैदान में थी, श्मसान में थी, सावन की रात के अँधेरे में थी, तबतक वह जैसे निर्भय थी, जैसे अपने राज्य में थी । दिन के प्रकाश में गाँव उसके लिए जैसे अत्यन्त भयानक जान पड़ने लगा । मनुष्य भूत से डरता है, भूत भी मनुष्य से डरता है, मृत्यु-नदी के दोनों किनारों पर दोनों का निवास है ।

तृतीय परिच्छेद

कपड़े कीचड़ में सन जाने, अद्भुत वेश एवं रात्रि-जागरण से पागल जैसी होकर, कादम्बिनी का जैसा चेहरा होगया था, उसे मनुष्य देखकर डर सकते थे एवं लड़के शायद दूर भागकर उसे ढेले मारते । सौभाग्य से एक राहगीर भद्रपुरुष ने उसे सर्वप्रथम इस अवस्था में देखा ।

उसने आकर कहा, "बेटी, तुम भले घर की कुलवधू लगती हो, तुम इस हालत में राह पर अकेली कहाँ जा रही हो ?"

कादम्बिनी पहले कोई उत्तर न देकर देखती रही ।

अचानक कुछ सोच भी नहीं सकी। वह अभी संसार में ही है, वह भले घर की बहू जैसी दिखाई पड़ती है, गाँव की राह में पथिक उससे कोई प्रश्न पूछ रहा है, यह सब उसे अनहोनी-सी बात जान पड़ने लगी।

पथिक ने उससे पुनः कहा, "चलो बेटी, मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँ—तुम्हारा घर कहाँ है ? मुझे बताओ।"

कादम्बिनी सोचने लगी। ससुराल लौटने की बात सोची भी नहीं जा सकती, बाप का घर भी नहीं है—उसी समय बचपन की एक सहेली की याद आगई।

उस योगमाया के साथ यद्यपि बचपन के बाद मुलाकात नहीं हुई थी, तथापि बीच-बीच में चिट्ठी-पत्री चलती रहती थी। किसी-किसी समय बाकायदे प्यार की लड़ाई भी चलती थी—कादम्बिनी जताना चाहती थी, वही अधिक प्यार करती है; योगमाया जताना चाहती थी, कादम्बिनी उसके स्नेह का यथा-उचित प्रतिदान नहीं देती। किसी सुयोग से एक बार उन दोनों का मिलन हो सकने पर जैसे एक पल के लिए भी कोई किसी की आँखों से ओझल नहीं होने दे सकती, इस सम्बन्ध में किसी को कोई सन्देह नहीं था।

कादम्बिनी ने भद्रपुरुष से कहा, "निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाऊँगी।"

पथिक महोदय कलकत्ते जारहे थे, निशिन्दापुर यद्यपि समीप ही नहीं था तो भी उनके जाने के रास्ते में ही पड़ता था। उन्होंने स्वयं बन्दोबस्त करके कादम्बिनी को श्रीपति-चरणबाबू के घर पहुँचा दिया।

दोनों सखियों का मिलन हुआ। पहले पहिचानने में कुछ देर लगी, तदुपरान्त बचपन का सादृश्य दोनों की आँखों में क्रमशः प्रस्फुटित हो उठा।

योगमाया ने कहा, "अरी मैया, मेरे कैसे भाग्य हैं ! तुम्हारा दर्शन पाऊँगी ऐसा तो मैंने सोचा भी नहीं था। परन्तु बहिन तुम किस तरह आई। तुम्हारी ससुराल के लोगों ने कैसे तुम्हें छोड़ दिया ?"

कादम्बिनी चुप रही; अन्त में बोली, "बहिन, ससुराल की बात मुझ से मत पूछो। मुझे दासी की भाँति घर के एक कोने में स्थान देदो, मैं तुम लोगों का काम करती रहूँगी।"

योगमाया ने कहा, "अरी मैया, यह क्या बात ! दासी की तरह क्यों रहोगी ? तुम मेरी सहेली हो, तुम मेरी—"इत्यादि।

इसी समय श्रीपति ने घर में प्रवेश किया। कादम्बिनी कुछ देर उनके मुँह की ओर देखती रहने के बाद धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई—सिर को कपड़े से ढँकना, अथवा किसी तरह के संकोच अथवा लज्जा का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया।

बाद में उसकी सहेली के विरुद्ध श्रीपति कुछ सोचें, इस लिए व्यस्त होकर योगमाया ने अनेकों प्रकार से उन्हें समझाना आरम्भ किया। परन्तु, इतना कम समझाया एवं श्रीपति ने इतनी सरलता से योगमाया के समस्त प्रस्ताव का अनुमोदन किया कि योगमाया मन ही मन विशेष सन्तुष्ट नहीं हुई।

कादम्बिनी सहेली के घर तो आई, परन्तु सहेली के साथ घुल-मिल नहीं सकी—बीच में मृत्यु का व्यवधान था। अपने सम्बन्ध में सदैव एक सन्देह एवं चेतना रहने पर दूसरे के साथ घुल-मिल नहीं जा सकता। कादम्बिनी योगमाया के मुँह की ओर देखती एवं न जाने क्या सोचती—सोचती, 'पति और घर-गृहस्थी को लिए हुए जैसे बहुत दूरी पर एक अन्य-दुनियाँ है। स्नेह-ममता एवं सम्पूर्ण कर्त्तव्य को लिए हुए वह जैसे पृथ्वी की प्राणी है और मैं जैसे शून्यछाया हूँ। वह जैसे

अस्तित्व के देश में है और मैं जैसे अनन्त के बीच में हूँ ।"

योगमाया को भी न जाने कैसा-कैसा लगने लगा, सो किसी प्रकार नहीं समझा जा सका । स्त्रियाँ रहस्य को नहीं सह सकतीं—कारण, अनिश्चित वस्तु को लेकर कविता की जा सकती है, वीरता दिखाई जा सकती है, पाण्डित्य दिखाया जा सकता है, परन्तु घर-गृहस्थी नहीं की जा सकती । इसीलिए स्त्रियाँ जिसे समझ नहीं पातीं, या तो उसके अस्तित्व को समाप्त कर उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं, अन्यथा उसे अपने हाथों से नवीन रूप देकर अपने व्यवहार योग्य एक वस्तु बना लेती हैं—यदि दोनों में से कुछ नहीं कर पातीं तो उसके ऊपर अत्यन्त नाराज़ बनी रहती हैं ।

कादम्बिनी जितनी दुर्बोध हो उठी, योगमाया उसके ऊपर उतनी ही नाराज़ होने लगी; सोच , यह क्या उपद्रव कन्धे पर आ चिपका ।

फिर एक और भी आफत है । कादम्बिनी स्वयं से ही डरती है । वह अपने पास से स्वयं ही किसी प्रकार नहीं भाग सकती । जिन्हें भूत का भय लगता है, उन्हें अपने पीछे भी डर लगा रहता है—जहाँ दृष्टि नहीं ठहरा सकते, वहीं भय है । परन्तु कादम्बिनी को स्वयम् से ही सबसे अधिक भय लगता है, अन्य किसी का उसे भय नहीं है ।

इसीलिए निर्जन दोपहरी में वह सूने घर में किसी-किसी दिन चीत्कार कर उठती है, एवं सन्ध्या के समय दिए की रोशनी में अपनी ही छाया को देखकर उसका शरीर झनझनाने लगता है ।

उसके इस भय को देखकर घर के सब लोगों के मन में न जाने कैसा एक भय उत्पन्न हो गया । दास-दासी एवं योगमाया ने भी जब-तब जहाँ-तहाँ भूत देखना आरम्भ कर दिया ।

एक दिन ऐसा हुआ, कादम्बिनी आधीरात को अपने

शयनगृह से रोती हुई बाहर निकलकर एकदम योगमाया के कमरे के द्वार पर पहुँच कर बोली, "दीदी, दीदी, तुम्हारे दोनों पाँव छूती हूँ। मुझे अकेली मत छोड़ा करो।"

योगमाया को जैसा डर लगा, वैसी ही नाराजी भी हुई। इच्छा हुई, उसी समय कादम्बिनी को दूर कर दे। दयालु श्रीपति ने बड़े प्रयत्न से शान्त करके समीपवर्त्ती कमरे में स्थान दे दिया।

दूसरे दिन असमय में अन्तःपुर में श्रीपति को बुलवाया गया। योगमाया ने उनकी अचानक भर्त्सना करनी आरम्भ कर दी ,"हाँजी, तुम कैसे आदमी हो एक स्त्री अपनी ससुराल छोड़कर तुम्हारे घर आ बैठी है, महीना भर हो गया तो भी जाने का नाम नहीं लेती, और तुम्हारे मुँह से एक आपत्ति तक नहीं सुनती। तुम्हारे मन का भाव क्या है जरा समझा कर तो कहो ! तुम पुरुषों की जाति ऐसी ही होती है।"

वास्तव में, साधारण स्त्री जाति पर पुरुषों का एक बिना विचारा पक्षपात होता है एवं उसके लिए स्त्रियाँ उन्हें अधिक अपराधी ठहरा बैठती हैं। निःसहाय परन्तु सुन्दरी कादम्बिनी के प्रति श्रीपति की करुणा जो यथोचित मात्रा से कुछ अधिक थी, उसके विरुद्ध उनके द्वारा योगमाया का शरीर स्पर्श करते हुए शपथ खाने को प्रस्तुत होने पर भी, उनके व्यवहार से उसका प्रमाण पाया जाता था।

वे मन में सोचते, "अवश्य ही ससुराल के लोग इस पुत्र-हीना विधवा के प्रति अन्याय-अत्याचार करते होंगे, तभी उसे सहन न कर पाने के कारण भागकर कादम्बिनी ने हमारा आश्रय ग्रहण किया है। जब इसके माँ-बाप कोई भी नहीं हैं, तब मैं इसे किस तरह त्याग दूँ।' यह सोचकर वे किसी प्रकार की खोज खबर लेने के प्रति उदासीन थे एवं कादम्बिनी से भी

इस अप्रिय सम्बन्ध में प्रश्न करके उसे व्यथित करने की उनकी इच्छा नहीं होती थी ।

तब उनकी स्त्री उनकी जड़-कर्त्तव्य बुद्धि पर अनेकों प्रकार के आघात पहुँचाने लगी। कादम्बिनी की ससुराल में खबर पहुँचाना उनके घर की शान्तिरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इसे वे अच्छी तरह समझ गए । लेकिन अन्त में स्थिर किया, एकदम चिट्ठी लिख बैठने से अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा, अतएव रानीहाट वे स्वयं जाकर, पता लगाकर जो कर्तव्य होगा, निश्चित करेंगे ।

श्रीपति तो चले गए, इधर योगमाया ने आकर कादबिम्नी से कहा, "सखी, यहाँ तुम्हारा और रहना अधिक अच्छा नहीं दीखता। लोग क्या कहेंगे ।"

कादम्बिनी ने गंभीरभाव से योगमाया के मुँह की ओर देखते हुए कहा, "लोगों के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

योगमाया बात सुनकर अवाक् रह गई । कुछ नाराज होकर बोली, "तुम्हारा नहीं है, हमारा तो है। हम लोग पराए घर की बहू को क्या कह कर टिकाए रख सकते हैं ?"

कादम्बिनी ने कहा, "मेरी ससुराल कहाँ है ?"

योगमाया ने सोचा, "लो मरो । मुँहजली कहती क्या है ।"

कादम्बिनी ने धीरे-धीरे कहा, "मैं क्या तुम लोगों की कोई हूँ। मैं क्या इस पृथ्वी की हूँ ? तुम लोग हँसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने अपनों को लिए हुए हो, तुम लोग मनुष्य हो और मैं छाया हूँ । समझ नहीं पाती, भगवान ने मुझे तुम लोगों के इस संसार में क्यों रख छोड़ा है ? तुम लोग भी डरते हो कि कहीं तुम लोगों के हंसी-खेल में मैं कोई अमङ्गल न ला दूँ—मैं भी समझ नहीं पाती कि

तुम लोगों के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है । परन्तु, ईश्वर ने जब हम लोगों के लिए कोई स्थान नहीं बना रक्खा है, तब सब तरह का बन्धन टूट जाने पर भी तुम्हीं लोगों के पास घूमना फिरना पड़ता है ।"

इस तरह के भाव प्रदर्शित करती हुई सब बातें कह गई कि योगमाया एक प्रकार से क्या से क्या समझ गई, परन्तु असली बात नहीं समझी, जबाव भी नहीं दे सकी । अत्यन्त भारग्रस्त गम्भीर भाव से चली गई ।

चतुर्थ परिच्छेद

रात के प्रायः दस बज रहे थे तब श्रीपति रानीहाट से लौट आए । मूसला-धार वर्षा में पृथ्वी डूबी जा रही थी । उसके क्रमशः झर-झर शब्द से ऐसा लगता था कि वर्षा का अन्त नहीं होगा, आज की रात भी समाप्त न होगी ।"

योगमाया ने पूछा, "क्या हुआ" ?"

श्रीपति ने कहा, "बहुत सी बातें हैं । फिर होंगी ।" कह कर कपड़े उतार कर भोजन किया एवं तम्बाकू पी कर सोने चले गए । बड़े चिन्तित से लग रहे थे ।

योगमाया बहुत देर तक कौतूहल को दबाए रही थी, खाट पर लेटते ही पूछा, "क्या सुना, कहो ।"

श्रीपति ने कहा, "अवश्य ही तुम एक भूल कर बैठी हो ।"

सुनते ही योगमाया मन ही मन कुछ नाराज हो उठी । स्त्रियाँ कभी भी भूल नहीं करतीं, यदि करें भी तो किसी भी बुद्धिमान पुरुष को उसका उल्लेख नहीं करना चाहिए, अपनी गर्दन झुका कर उसे स्वीकार कर लेना ही उचित है । योग-माया ने तनिक तेजी से कहा, "किस तरह, सुनूँ तो !"

श्रीपति ने कहा, "जिस स्त्री को तुमने घर में जगह दी है, वह तुम्हारी कादम्बिनी नहीं है ।"

इस तरह की बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है–विशेषकर अपने पति के मुँह से सुनकर तो कहना ही क्या है। योगमाया ने कहा, "अपनी सहेली को मैं नहीं पहिचानती, तुम्हारे पहिचाने जाने पर पहिचानूँगी क्या—बात कहने का कैसा ढँग है ?"

श्रीपति ने समझाया, इस जगह बात का ढँग लेकर किसी तरह का तर्क नहीं हो रहा, प्रमाण देखना होगा। योगमाया की सहेली कादम्बिनी मर चुकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

योगमाया ने कहा, "यह भी सुनो। तुम अवश्य कोई गलती कर आए हो। कहाँ जाने की बजाय कहाँ जा पहुँचे, क्या सुनने के बजाय क्या सुन बैठे, इसका ठिकाना नहीं। तुम्हें स्वयं जाने के लिए किसने कहा था ? एक चिट्ठी लिख देने भर से सबर हो जाता।"

अपनी कार्यकुशलता के प्रति पत्नी के इस प्रकार अविश्वास करने के कारण श्रीपति अत्यन्त खिन्न होकर विस्तार-पूर्वक समस्त प्रमाण प्रयुक्त करने लगे, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। दोनों पक्षों में हाँ-नाँ करते-करते आधी रात हो गई।

यद्यपि कादम्बिनी को इसी क्षण घर से बाहर निकाल देने के सम्बन्ध में पति-पत्नी में से किसी को भी मतभेद नहीं था—कारण, श्रीपति को विश्वास था कि उनके अतिथि ने झूठा-परिचय देकर उनकी स्त्री को इतने दिनों तक धोखा दिया है एवं योगमाया को विश्वास था कि वह कुल में दाग लगा कर आई है—तो भी उपस्थित तर्क के सम्बन्ध में दोनों में से कोई हार नहीं मानना चाहता था।

दोनों का कण्ठ-स्वर क्रमशः ऊँचा हो उठने लगा, भूल गए कि पास के ही कमरे में कादम्बिनी सोई हुई है।

एक ने कहा, "अच्छी विपत्ति में पड़ गए । मैं अपने कानों से सुन आया हूँ ।"

दूसरा दृढ़ स्वर में बोला, "यह बात कहने से कैसे मान लूँ, मैं अपनी आँखों से देख रही हूँ ।"

अन्त में योगमाया ने पूछा, "अच्छा कादम्बिनी कब मरी थी, जरा बताओ तो ।"

सोचा था कादम्बिनी की किसी एक चिट्ठी की तारीख से मिलान करके श्रीपति के भ्रम को प्रमाण सहित सिद्ध कर देगी ।

श्रीपति ने जो तारीख बताई, दोनों ने हिसाब लगा कर देखा, जिस दिन सन्ध्या के समय कादम्बिनी उनके घर में आई थी, वह तारीख ठीक उसके पहले दिन पड़ती थी । सुनते ही योगमाया का हृदय अचानक काँप उठा, श्रीपति को भी न जाने कैसा लगने लगा ।

इसी समय उनके कमरे का द्वार खुल गया, एक बरसाती हवा का झोंका आकर दीपक को फस् करके बुझा गया । बाहर के अँधेरे के प्रविष्ट हो जाने से सारा कमरा अँधेरे से भर गया । कादम्बिनी एक दम कमरे के भीतर आकर खड़ी होगई । उस समय रात ढाई प्रहर बीत चुकी थी, बाहर लगातार वर्षा हो रही थी ।

कादम्बिनी ने कहा, "सखी, मैं तुम्हारी वही कादम्बिनी हूँ, परन्तु इस समय मैं जीवित नहीं हूँ । मैं मर चुकी हूँ ।"

योगमाया भय से चीत्कार कर उठी; श्रीपति के मुँह से आवाज नहीं निकली ।

"परन्तु मैंने मरने के अतिरिक्त तुम लोगों के समक्ष और क्या अपराध किया है । मुझे यदि इस लोक में भी स्थान नहीं है, परलोक में भी स्थान नहीं है—क्यों जी, तब मैं कहाँ

जाऊँ ?" तीव्रकण्ठ से चीत्कार करके इस गंभीर बरसाती-रात में सोए हुए विधाता को जगा कर पूछने लगी, "क्यों जी, तब मैं कहाँ जाऊँ ?"

यह कह कर मूर्च्छित दम्पति को अँधेरे घर में छोड़कर कादम्बिनी संसार में अपने लिए स्थान ढूँढ़ने चल दी।

पंचम परिच्छेद

कादम्बिनी किस तरह रानीहाट पहुँच गई, इसे कहना कठिन है। परन्तु, पहले किसी को दिखाई नहीं दी। सारे दिन भूखे रहकर एक टूटे खण्डहर से मन्दिर में बिता दिया।

वर्षा की अकाल-सन्ध्या जब अत्यन्त घनीभूत हो आई एवं आसन्न दुर्योग की आशंका से गाँव के लोग घबराकर अपने-अपने घरों में जा बैठे, तब कादम्बिनी बाहर सड़क पर निकली। ससुराल के मकान के दरवाजे पर पहुँच कर एक बार उसका हृदय काँप उठा, परन्तु पूरा घूँघट खींचकर जब भीतर प्रविष्ट हुई तो नौकरानी समझ कर दरबानों ने कोई बाधा नहीं दी। इसी समय खूब जोर की वर्षा होने लगी, हवा भी तेजी से बहने लगी।

उस समय घर की मालकिन शारदाशङ्कर की स्त्री अपनी विधवा ननद के साथ ताश खेल रही थी। नौकरानी थी रसोई घर में एवं पीड़ित बालक बुखार ढीला पड़ जाने पर शयनगृह में बिछौने पर सो रहा था। कादम्बिनी ने सब की आँख बचाकर उसी कमरे में प्रवेश किया। वह क्या सोच कर ससुराल में आई थी, पता नहीं, वह स्वयं भी नहीं जानती थी, केवल इतना ही जानती थी कि एकबार बच्चे को आँखों से देख लेने की इच्छा है। उसके बाद कहाँ जाएगी, क्या होगा, इस बात

को उसने सोचा भी नहीं था।

दीपक के उजाले में देखा, रुग्ण-शीर्ण बालक हाथ की मुट्ठी बाँधे सो रहा है। देखकर उत्तप्त हृदय जैसे तृषातुर हो उठा—उसकी सब बलाओं को लेकर, उसे एक बार छाती से चिपकाए बिना क्या रहा जा सकता है। और उसके बाद याद आया, "मैं नहीं हूँ, इसको देखने वाला कौन है? इसकी माँ को तो बैठक-उठक अच्छी लगती है, गप्पें अच्छी लगती हैं, खेल अच्छा लगता है, अब तक मेरे हाथों में इसका भार सौंप कर वह निश्चिन्त थी, कभी भी इसके पालन-पोषण की कोई तकलीफ उसे नहीं उठानी पड़ी। आज इसकी कौन उस तरह देख भाल करता होगा?'

इसी समय बालक अचानक करवट बदल कर अर्द्ध निद्रित अवस्था में कह उठा, "चाची, पानी दे।" हाय, प्राण निकले जाते हैं। मेरे सोने के लाल, तू चाची को अब भी नहीं भूल सका। झटपट सुराही में से पानी गिलास में उँडेल कर, बच्चे को छाती से लगा कर कादम्बिनी ने उसे पानी पिलाया।

जब तक नींद की खुमारी थी, सर्वत्र के अभ्यास की भाँति चाची के हाथ से पानी पीने में बालक को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अन्त में कादम्बिनी ने जब बहुत समय की आकांक्षा की पूर्ति करते हुए उसका मुँह चूमकर, उसे फिर सुला दिया, तब उसकी नींद टूट गई एवं चाची से लिपटते हुए पूछने लगा, "चाची, तू मर गई थी?"

चाची ने कहा, "हाँ, बेटा।"

"फिर तू मेरे पास लौट आई है? अब तू मरेगी तो नहीं?"

इसका उत्तर देने से पहले ही एक बवण्डर मच गया-दासी ने एक कटोरी में साबूदाना लिए हुए कमरे में प्रवेश

किया था, अचानक कटोरी को फेंक कर 'अरी मैया' कह कर पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।

चीत्कार सुनकर ताश फेंक कर बहू दौड़ी आई, घर में घुसते ही वे एक बार ठूँठ जैसी हो गई, भाग भी नहीं सकी; मुँह से एक बात भी नहीं निकली ।

यह सब घटना देखकर बालक के मन में भी भय का संचार हो उठा—वह रोता हुआ कह उठा, "चाची, तू जा ।"

कादम्बिनी ने बहुत दिनों बाद आज अनुभव किया कि वह मरी नहीं है—वही पुराना घर-द्वार, वही सब कुछ, वही बालक, वही स्नेह, उसके लिए सब कुछ जीवित जैसा ही है, बीच में कोई विच्छेद, कोई व्यवधान नहीं पड़ा । सहेली के घर जाकर अनुभव किया था कि बचपन की वह सहेली मर गई है; बच्चे के घर में आकर समझ सकी, बालक की चाची तिल भर भी नहीं मरी है ।

व्याकुल भाव से बोली, "दीदी तुम लोग मुझे देख कर डर क्यों रहे हो । यह देखो, मैं तुम्हारी वही वैसी ही हूँ ।"

बहू और खड़ी नहीं रह सकीं, मूर्छित होकर गिर पड़ी । बहिन से समाचार पाकर शारदाशङ्कर बाबू स्वयं आ उपस्थित हुए; उन्होंने हाथ जोड़कर कादम्बिनी से कहा, "छोटी बहू, यह क्या तुम्हें उचित है । सतीश हमारे वंश का एक मात्र लड़का है, इसके ऊपर तुम क्यों दृष्टि डाल रही हो । हम लोग क्या तुम से अलग हैं । तुम्हारे जाने के बाद से ही प्रतिदिन सूखा जा रहा है, उसे बीमारी छोड़ती ही नहीं, दिन-रात केवल 'चाची, चाची' पुकारता रहता है । जब संसार से विदा ही लेली, तो यह माया बन्धन भी छोड़ जाओ—हम लोग तुम्हारा यथोचित संस्कार कर देंगे ।"

तब कादम्बिनी और नहीं सह सकी; तीव्रकण्ठ से कहने

लगी, "अरे, मैं मरी नहीं हूँ जी, मरी नहीं हूँ, मैं किस तरह तुम लोगों को समझाऊँ, मैं मरी नहीं हूँ। यह देखो, मैं जीवित हूँ।"

कह कर कांसे की कटोरी को पृथ्वी से उठाकर अपने सिर पर मारने लगी, सिर फट कर खून बहने लगा।

तब बोली, "यह देखो, मैं जीवित हूँ।"

शारदाशङ्कर मूर्त्ति की भाँति खड़े रहे; बालक भयभीत होकर पिता को पुकारने लगा; दोनों मूर्च्छिता स्त्रियाँ धरती पर पड़ी रहीं।

तब कादम्बिनी "अरे, मैं मरी नहीं हूँ जी, मरी नहीं—" कह कर चीत्कार करती हुई घर से बाहर निकल कर सीढ़ियों से नीचे उतर कर अन्तःपुर के तालाब के पानी में जा गिरी। शारदाशङ्कर ने ऊपर के कमरे से सुना कि 'छपाक' से एक शब्द हुआ।

सारी रात पानी बरसता रहा; उसके दूसरे दिन सबेरे भी बर्षा हो रही थी, मध्याह्न में भी वर्षा नहीं थमी। तब कादम्बिनी ने मर कर प्रमाणित किया कि 'वह मरी नहीं है।'

स्वर्णमृग

आदिनाथ और वैद्यनाथ चक्रवर्त्ती दोनों साझीदार हैं। दोनों में वैद्यनाथ की अवस्था ही कुछ खराब है। वैद्यनाथ के पिता महेशचन्द्र में धन-सम्पत्ति बढ़ाने की योग्यता नहीं थी, वे अपने बड़े भाई शिवनाथ के ऊपर पूर्णरूपेण निर्भर बने रहते थे। शिवनाथ ने भाई को अत्यन्त स्नेहपूर्ण बातें प्रदान कीं एवं उसके बदले में उनकी सारी ज़मीन-जायदाद हड़प ली। केवल थोड़े से प्रामेसरी नोट बच रहे। जीवन-समुद्र में उन्हीं कागजों की नाव का वैद्यनाथ को एकमात्र सहारा है।

शिवनाथ ने बड़ी खोज करके अपने पुत्र आदिनाथ के साथ एक धनी व्यक्ति की इकलौती पुत्री का विवाह कर सम्पत्ति में वृद्धि का एक और सुयोग कर रक्खा था। महेशचन्द्र ने सात-कन्याओं के भार से ग्रस्त एक दरिद्र-ब्राह्मण पर दया करते हुए एक पैसा दहेज में लिए बिना उसकी बड़ी लड़की

के साथ अपने पुत्र का विवाह कर लिया था। वे उसकी सातों कन्याओं को अपने ही घर में नहीं ला सके, इसका कारण केवल एक ही पुत्र का होना था एवं ब्राह्मण ने भी ऐसा करने के लिए अनुरोध नहीं किया था। तो भी, उन लड़कियों के विवाह के लिए उन्होंने अपनी सामर्थ्य से अधिक धन की सहायता की थी।

पिता की मृत्यु के पश्चात् वैद्यनाथ उनके कुछ प्रामेसरी नोटों को लेकर पूर्णरूपेण निश्चिन्त और हृदय में सन्तुष्ट थे। काम-काज की बात उन्हें याद ही नहीं आती थी। काम में केवल पेड़ की डाली काटकर बैठे-बैठे बड़े यत्न से छड़ी बनाया करते थे। दुनियाँ भर के बालक तथा युवकगण उनके निकट छड़ी के उम्मीदवार बने रहते, वे दान करते रहते थे। इसके अतिरिक्त उदारता की उत्तेजना में मछली पकड़ने की वंशी एवं पतंग उड़ाने की चरखी बनाने में भी उनका बहुत समय जाता। जिसे बड़ी सावधानी से बहुत समय तक छीलने-घिसने की जरूरत पड़े एवं सांसारिक उपयोगिता को देखने में जो उस परिमाण में परिश्रम एवं समय का अपव्यय करने के अयोग्य हो, ऐसा कोई काम हाथ पड़ जाने पर तो उनके उत्साह की सीमा ही नहीं रहती थी।

मुहल्ले में जब दलबन्दी और षड़यन्त्र को लेकर बंगाल के बड़े-बड़े पवित्र चण्डीमण्डप धुएँ से भर जाते हैं, उस समय वैद्यनाथ एक कलम बनाने का चाकू एवं एक पेड़ की डाली का टुकड़ा लेकर प्रातःकाल से मध्याह्न एवं आहार और निद्रा के बाद सायंकाल तक अपने दावों का अकेले ही भुगतान करते रहते हैं, ऐसा प्रायः देखा जाता है।

षष्ठीदेवी की कृपा से शत्रुओं के मुँह में यथाक्रम राख डालते हुए वैद्यनाथ के यहाँ दो पुत्र एवं एक कन्या ने जन्मग्रहण

किया ।

गृहिणी मोक्षदा सुन्दरी का असन्तोष प्रतिदिन बढ़ता जाता है । आदिनाथ के घर में जैसा समारोह है, वैद्यनाथ के घर में भी वैसा ही क्यों नहीं होगा । उस घर की विन्ध्यवासिनी के पास आभूषण, बनारसी साड़ी, बातचीत करने का ढँग एवं चाल-चलन का गौरव है, मोक्षदा के घर ठीक वैसा ही नहीं है, इससे अधिक युक्ति विरुद्ध व्यापार और क्या हो सकता है । अस्तु, एक ही तो परिवार है । भाई की जमींदारी को ठग कर ले लेने पर ही तो उनकी इतनी उन्नति हुई है । जितना सुनतीं, उतनी ही मोक्षदा के हृदय में अपने श्वसुर के लिए एवं श्वसुर के एकमात्र पुत्र के लिए अश्रद्धा एवं अवज्ञा बढ़ती ही जाती । अपने घर का कुछ भी उन्हें अच्छा नहीं लगता । सभी तो असुविधा एवं मानहानि-जनक है । शयन करने की खाटें मृत-शरीर को ढोने योग्य भी नहीं हैं, जिसकी सातपीढ़ी में भी कोई न हो, ऐसा कोई अनाथ चमगादड़ का बच्चा भी इस जीर्ण चहारदीवारी में नहीं रहना चाहेगा, एवं घर की सजावट देखकर ब्रह्मचारी परमहंस की आँखों में भी पानी भर आएगा । इन सब अतिशयोक्तियों का प्रतिवाद करना पुरुषों की भाँति कायर जाति के लिए असम्भव ही है । अस्तु, वैद्यनाथ बाहर के चबूतरे पर बैठकर दूने मनोयोग से छड़ी छीलते हुए बैठे रहते ।

परन्तु, मौनव्रत विपत्ति की एकमात्र अमोघ औषधि नहीं है । किसी-किसी दिन पति के शिल्प-कार्य में विघ्न डालकर गृहिणी उन्हें अन्तःपुर में बुलवा लेतीं । अत्यन्त गंभीर भाव से दूसरी ओर देखती हुई कहतीं, "ग्वाले का दूध बन्द कर दो ।"

वैद्यनाथ कुछ क्षण निस्तब्ध रह कर नम्रभाव से कहते, "दूध बन्द कर देने से कैसे चलेगा ? बच्चे क्या पिएँगे ?"

गृहिणी उत्तर देती, "माँड़ ।"

फिर किसी दिन इसके विपरीत भाव दिखाई पड़ता— गृहिणी वैद्यनाथ को बुला कर कहतीं, "मैं नहीं जानती । जो करना हो, तुम्हीं करो ।"

वैद्यनाथ म्लानमुख से पूछते, "क्या करना होगा ?"

स्त्री कहती, "इस महीने का सामान बाजार से ले आओ" कह कर एक ऐसी लिस्ट दे देतीं, जिससे कोई राजसूय यज्ञसमारोहपूर्वक सम्पन्न हो सके ।

वैद्यनाथ यदि साहस करके पूछते "इतने की आवयश्कता क्या है ।" उत्तर सुनते, "तब बाल बच्चे खाए बिना मरें और मैं भी चली जाऊँ । तदुपरान्त तुम अकेले बैठकर खूब सस्ते में गृहस्थी चला सकोगे ।"

इस तरह क्रम-क्रम वैद्यनाथ समझ जाते, छड़ी छीलने से और नहीं चलेगा । कुछ-न-कुछ उपाय करना चाहिए । नौकरी करना अथवा व्यापार कर वैद्यनाथ के लिए निराशापूर्ण था । अतएव कुबेर के भण्डार में प्रवेश करने के लिए एक संक्षिप्त मार्ग का आविष्कार करना चाहिए ।

एक दिन रात को बिछौने पर पड़े हुए कातरभाव से प्रार्थना करने लगे, "हे माँ जगदम्बे, स्वप्न में यदि किसी दुःसाध्य रोग की पेटेन्ट औषधि बता दो तो अखबारों में उसका विज्ञापन निकलवाने का भार मैं उठा लूँगा ।"

उसी रात को स्वप्न में देखा, उनकी स्त्री उनसे असन्तुष्ट होकर 'विधवा विवाह' करने का एकदम प्रण कर बैठी । "अर्थाभाव के रहते हुए भी उपयुक्त आभूषण कहाँ से मिल सकते हैं–" कहकर वैद्यनाथ उक्त प्रस्ताव पर आपत्ति कर रहे हैं; "विधवा के लिए गहनों की आवश्यकता नहीं"—कहकर पत्नी आपत्ति का खण्डन कर रही है । उसका कोई मुँह तोड़ उत्तर भी है; यह उन्हें जान पड़ रहा था, परन्तु किसी भी तरह दिमाग में नहीं

आ रहा था, इसी बीच निद्रा भंग होगई तो देखा सवेरा हो गया है, एवं किस कारण उनकी स्त्री का विधवा-विवाह नहीं हो सकता, इसका उत्तर भी तुरन्त याद आगया एवं इसके लिए वे शायद कुछ दु:खी भी हो गए।

दूसरे दिन प्रात:कृत्य समाप्त कर अकेले बैठे हुए पतंग में डोरा बाँध रहे थे, इसी समय एक सन्यासी जयध्वनि करता हुआ द्वार पर आ पहुँचा। उसी क्षण बिजली की भाँति वैद्यनाथ को भावी-ऐश्वर्य की उज्जवल मूर्त्ति दिखाई दे गई। सन्यासी के लिए प्रचुर परिमाण में आदर-अभ्यर्थना एवं आहार एकत्र हुआ। अनेक साध-साधना के पश्चात् जान पाए, सन्यासी सोना तय्यार कर सकते हैं एवं उस विद्या को बता देने में भी वे असहमत नहीं हुए।

गृहिणी भी नाच उठीं। यकृत् में विकार हो जाने पर मनुष्य को जिस प्रकार सब वस्तुएँ पीले रंग की दिखाई देती हैं, उसी प्रकार वे भी सम्पूर्ण पृथ्वी पर सोना ही सोना देखने लगीं। कल्पना-शिल्पी द्वारा सोने के पलँग, घर की सजावट एवं घर की दीवाल तक को स्वर्ण-मण्डित करती हुई मन ही मन विन्ध्य-वासिनी को भी निमन्त्रित कर दिया।

सन्यासी प्रतिदिन दो सेर दूध एवं डेढ़ सेर मोहनभोग खाने लगे। वैद्यनाथ के प्रामेसरी नोटों को दुहकर अजस्र रौप्य-रस निकालने लगे।

मछली पकड़ने की बंसी, छड़ी और पतंग का डोरा लपेटने की चरखी के भिखारी वैद्यनाथ के बन्द दरवाजे पर निष्फल आघात करके चले जाते। घर के बाल-बच्चे यथा समय खाना भी नहीं खा पाते, धरती पर गिरकर कपाल में गुमड़े डाल लेते, रो-रो कर आकाश फाड़ डालते पर घर के मालिक और मालकिन उन्हें भौंहें उठा कर भी नहीं देखते। चुपचाप चूल्हे के

सामने बैठे हुए कड़ाही की ओर देखते हुए दोनों की आँखों की पलकें भी नहीं लगतीं, मुँह से बात तक नहीं निकलती। तृषित एकाग्र नेत्रों में अविश्राम अग्निशिखा का प्रतिबिम्ब पड़ते रहने से आँखों की पुतलियों को जैसे स्पर्शमणि (पारस पत्थर) के गुण प्राप्त हो गए। दृष्टि-पथ सन्ध्याकालीन सूर्यास्तपथ की भाँति प्रज्ज्वलित स्वर्ण के प्रलेप से रङ्गीन हो उठा।

दो प्रामेसरी नोटों की इस स्वर्ण-अग्नि में आहुति दे चुकने के पश्चात् एक दिन सन्यासी ने आश्वासन दिया, "कल सोने में रंग आएगा।"

उस दिन रात में फिर किसी को नींद नहीं आई, स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी का निर्माण करने लगे। उस संबंध में बीच-बीच में दोनों के बीच मतभेद एवं तर्क भी उपस्थित हुए, परन्तु आनन्द के आवेग में उसकी मीमांसा होने में देर नहीं लगी। परस्पर एक दूसरे का ध्यान रखते हुए अपने-अपने मत में थोड़ी-थोड़ी कमी कर लेने में अधिक खींचतान नहीं की, उस रात दम्पति का ऐकीकरण इतना घनीभूत हो उठा था।

दूसरे दिन, फिर सन्यासी दिखाई नहीं दिया। चारों ओर से सोने का रंग समाप्त हो गया, एवं सूर्य की किरणें तक अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगीं। इसके पश्चात् सोने की खाट, घर की सजावट एवं मकान की दीवाल चौगुनी दरिद्रता एवं जीर्णता प्रकट करने लगीं।

इस समय से घर के कामों में वैद्यनाथ द्वारा किसी सामान्य-मत के प्रकट किए जाने पर गृहिणी तीव्रमधुर स्वर में कहतीं "बुद्धि का बहुत कुछ परिचय दे चुके हो, अब कुछ दिन शान्त रहो।" वैद्यनाथ एक दम बुझ जाते।

मोक्षदा ने एक ऐसी श्रेष्ठता का भाव धारण कर लिया है; कि उस स्वर्णमरीचिका में उन्हें एक क्षण के लिए भी

शान्ति नहीं मिलती ।

अपराधी वैद्यनाथ स्त्री को कुछ सन्तुष्ट करने के लिए अनेकों उपाय खोजने लगे । एक दिन एक चौकोर कागज का का गुप्त-उपहार लेकर वे स्त्री के पास जाकर मुस्कुराते हुए अत्यन्त चतुराईपूर्वक गर्दन हिला कर बोले, "क्या लाया हूँ, बताओ तो जानूँ !"

स्त्री ने कौतूहल को छिपाते हुए उदासीनभाव से कहा, "किस तरह बताऊँ, मैं जादू तो जानती ही नहीं ।"

वैद्यनाथ ने अनावश्यक समय गँवाने के पूर्व ही सुतली की गाँठ बहुत धीरे-धीरे खोली, तत्पश्चात् फूंक मार कर कागज़ की धूलि झाड़ी, तदुपरान्त अत्यन्त सावधानी से एक-एक पर्त्त करके कागज़ के मोड़ को खोला कर आर्टस्टूडियो द्वारा चित्रित दस महाविद्या की तस्वीर को बाहर निकाल कर, उजाले की ओर घुमाते हुए गृहिणी के सामने रखदी ।

गृहिणी को उसी समय विन्ध्यवासिनी के शयन कक्ष में रक्खे हुए विलायती तैल-चित्र की याद आ गई; अपर्याप्त अवज्ञा के स्वर में कहा, "अरे, मरी जाती हूँ ! इसे तुम अपनी बैठक में ही रखकर, बैठे-बैठे देखते रहना । यह मेरे काम की नहीं है ।" विमर्ष वैद्यनाथ समझ गए, अन्यान्य अनेक क्षमताओं सहित स्त्रियों के मन को प्रसन्न करने की दुरूह क्षमता से भी विधाता ने उन्हें वंचित रखा है ।

इधर, देश भर में जितने ज्योतिषी थे, मोक्षदा ने सभी को हाथ दिखाया, जन्मपत्र दिखाई । सभी ने कहा, वे सधवावस्था में ही मरेंगी ।' परन्तु उस परमानन्दमय परिणाम के लिए वे अधिक व्यग्र नहीं थीं; अतएव इससे उनके कौतूहल की निवृत्ति नहीं हुई ।

सुना कि उनका सन्तान-भाग्य अच्छा है, पुत्र-कन्याओं

से उनका घर शीघ्र ही परिपूर्ण हो उठने की सम्भावना है। सुनकर उन्होंने विशेष प्रफुल्लता प्रकट नहीं की।

अन्त में एक व्यक्ति ने हिसाब लगाकर कहा, सालभर के भीतर ही यदि वैद्यनाथ को दैव-धन (अचानक-धन) न मिल जाय तो वे ज्योतिषी अपने सभी पोथी-पत्रों को जला फेंकेंगे। ज्योतिषी के ऐसे कठोर प्रण को सुनकर मोक्षदा के मन में फिर तिलभर भी अविश्वास का कारण नहीं रहा।

ज्योतिषी लोग तो प्रचुर पारितोषिक लेकर विदा हो गए, परन्तु वैद्यनाथ का जीवन भारस्वरूप हो उठा। धन-उपार्जन के कितने ही साधारण प्रचलित मार्ग हैं, जैसे खेती, नौकरी, व्यवसाय, चोरी एवं ठगी। परन्तु, दैव-धन प्राप्त करने के लिए वैसा कोई निश्चित उपाय नहीं है। इसके लिए मोक्षदा वैद्यनाथ को जितना उत्साह देतीं एवं भर्त्सना करतीं, वैद्यनाथ उतने ही किसी ओर मार्ग नहीं देख पाते। कहाँ से खोदना आरम्भ करें, किस पोखर में पनडुब्बों को घुसावें, घर की कौनसी दीवाल तोड़नी पड़ेगी, सोचकर कुछ भी स्थिर नहीं कर सके।

मोक्षदा ने अत्यन्त विरक्त होकर पति को जताया कि पुरुषों के मस्तिष्क में दिमाग के बदले इतना गोबर भरा रहता है, इसे वे पहले से नहीं जानती थीं। बोलीं, थोड़ा-सा हिल-डुल कर देखो। हाँ करके बैठे रहने पर क्या आकाश से रुपयों की वर्षा होगी।"

बात ठीक ही थी एवं वैद्यनाथ की अपनी इच्छा भी यही थी, परन्तु किस ओर हिलें, किसके ऊपर चढ़ें, इसे कोई नहीं बता कर देता। अतएव, चबूतरे पर बैठ कर वैद्यनाथ फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मास का दुर्गा-उत्सव समीप आ पहुँचा। चतुर्थी

के दिन से ही घाट पर नावें आने लगीं। प्रवासी लोग घर लौटकर आ रहे थे। टोकरियों में अरवी, कुम्हड़ा, सूखे नारियल; टीन के बक्सों में लड़कों के लिए जूता, छाता, कपड़े एवं प्रेयसियों के लिए एसेन्स, साबुन, नई कहानियों की किताबें एवं सुगन्धित नारियल के तेल ला रहे थे।

मेघयुक्त आकाश से शरद् ऋतु के सूर्य की किरणें उत्सव की हँसी की भाँति व्याप्त होकर गिर रहीं थीं; प्राय: पके हुए धान के खेत थर-थर करके काँप रहे थे; वर्षा से धुले हुए सतेज तरुपल्लव नवीन शीतल वायु से सिहर-सिहर उठते थे—एवं चायना-टसर का कोट पहिने, कन्धे पर चुनी हुई चादर लटकाए, सर पर छतरी लगाए, घर लौटने वाले पथिक मैदान के रास्ते से घर की ओर जा रहे थे।

वैद्यनाथ बैठे-बैठे उन्हें देखते एवं उनके हृदय से दीर्घ-निश्वास उच्छ्वासित हो उठता। अपने आनन्दहीन घर के साथ बंगाल देश के सहस्रों घरों के मिलनोत्सव की तुलना करते एवं मन ही मन कहते 'विधाता ने मुझे क्यों ऐसा अकर्मण्य बनाया हैं ?'

लड़के सबेरे उठते ही प्रतिमा-निर्माण देखने के लिए आदिनाथ के मकान के आँगन में जा उपस्थित हुए। खाने का समय होने पर दासी उन्हें जबरदस्ती गिरफ्तार करके ले आई। उस समय वैद्यनाथ बैठे-बैठे इस विश्वव्यापी उत्सव के बीच अपने जीवन की निष्फलता का स्मरण कर रहे थे। दासी के हाथों से दो लड़कों का उद्धार कर, घनिष्टभाव से गोद के समीप खींचते हुए बड़े लड़के से पूछा, 'क्यों रे अबू, इस बार पूजा के समय क्या चाहता है ? कह तो देखूं !'

अविनाश ने उसी समय उत्तर दिया, "एक नाव बना देना पिताजी !"

छोटे ने भी मन में सोचा, बड़े भाई की अपेक्षा किसी बात में कम रह जाने से कुछ नहीं है; कहा, "मुझे भी एक नाव देना, पिताजी।"

पिता के उपयुक्त लड़के हैं। एक अकर्मण्य शिल्प-कार्य पा जाने पर और कुछ नहीं चाहते। पिता ने कहा, "अच्छा।"

इधर यथासमय पूजा की छुट्टियों में मोक्षदा के एक चाचा घर लौटकर आए। वे वकालत करते हैं। मोक्षदा ने कुछ दिनों तक उनके घर खूब आना-जाना रक्खा।

अन्त में एक दिन पति से आकर कहा, "सुनो जी, तुम्हें काशी जाना पड़ेगा।"

वैद्यनाथ को अचानक लगा, शायद उनका मृत्यु-काल आ पहुँचा है, ज्योतिषी ने जन्म-पत्री में से ढूँढ़ निकाला होगा, सहधर्मिणी वही खोज कर उनकी सद्‌गति करने के लिए उपाय कर रही हैं।

फिर सुना, ऐसी जनश्रुति है कि काशी में एक मकान है, उस जगह गुप्तधन मिलने की बात है, उस मकान को खरीद कर उसमें से धन निकाल कर लाना होगा।

वैद्यनाथ बोले, "यह क्या सर्वनाश, मैं काशी नहीं जा सकूँगा।"

वैद्यनाथ घर छोड़ कर कहीं भी नहीं जाते। गृहस्थ को जिस तरह घर से निकाला जाता है, इसे प्राचीन शास्त्र-कारों ने लिख दिया है, स्त्रियों में उस संबंध में 'अशिक्षित-पटुत्व' है। मोक्षदा अपने मुँह की बातों से घर के भीतर जैसे लालमिर्च का धुआँ भर सकती थीं; परन्तु उससे हतभाग्य वैद्यनाथ केवल आँखों से आँसू बहा कर रह जाते, काशी जाने का नाम नहीं लेते।

दो-तीन दिन बीत गए। वैद्यनाथ ने बैठे-बैठे कितने ही

लकड़ी के टुकड़े काटकर, छाँट कर, जोड़ लगाकर, दो खेलने की नावें तय्यार कीं । उनमें मस्तूल बैठाए एवं कपड़ा काटकर पाल लगा, दिए, लाल कपड़े की पताका लगाई; एक माँझी का पुतला एवं एक उसका सवार बनाना भी नहीं छोड़ा । उसमें बड़े यत्न एवं आश्चर्यजनक निपुणता को प्रकट किया । उन नावों को देखकर जिसे असहनीय चित्त-चांचल्य उत्पन्न न हो, ऐसा संयत-चित्त बालक मिलना दुर्लभ ही है । अतएव, वैद्यनाथ ने सप्तमी से पहली रात्रि को जब दोनों नावें लेकर लड़कों के हाथ में दीं तो वे आनन्द से नाच उठे । एक तो खाली नाव ही यथेष्ट थीं, उस पर भी फिर हाल था, डांड़ था, मस्तूल था, पाल था और यथास्थान माँझी बैठा था, यह सब उनके लिए बड़े आश्चर्य के कारण थे ।

लड़कों के आनन्द-कलरव से आकर्षित होकर मोक्षदा ने आकर दरिद्र पिता का पूजा का उपहार देखा ।

देखकर, नाराज होकर, रोकर, सिर पर हाथ मार कर, दोनों खिलौनों को छीन कर खिड़की से बाहर फेंक दिया, सोने का हार गया, साटिन का कोट गया, जरी की टूप गई, अन्त में यह अभागा मनुष्य दो खिलौने देकर अपने लड़कों को ठगने आया है । उसमें भी दो पैसे का खर्च नहीं, अपने ही हाथ का निर्माण है ।

छोटा लड़का तो ऊर्ध्वश्वास लेकर रोने लगा । 'बेवकूफ लड़का' कह कर मोक्षदा ने उसके एक तमाचा जड़ दिया ।

बड़ा लड़का पिता के मुँह की ओर देखता हुआ अपना दुःख भूल गया । ऊपरी उल्लास दिखाता हुआ बोला, "पिताजी, कल मैं सबेरे जाकर उन्हें उठा लाऊँगा ।"

वैद्यनाथ उसके दूसरे दिन काशी जाने को तय्यार हो गए । परन्तु, रुपये कहाँ हैं ? उनकी स्त्री ने गहने बेच कर रुपये इकट्ठे

दिए । वैद्यनाथ की दादी के समय के गहने थे, ऐसे खालिस सोने के भारी गहने आजकल के दिनों में मिल ही नहीं सकते ।

वैद्यनाथ को लगा, वे मरने को जा रहे हैं । लड़कों को गोद में लेकर, चुम्बन करके, आँखों में आँसू भरकर घर से बाहर निकले । उस समय मोक्षदा भी रोने लगी ।

काशी का मकानवाला वैद्यनाथ के चचिया-श्वसुर का मवक्कल था । शायद, इसी कारण मकान बहुत बड़ी कीमत पर बेचा गया । वैद्यनाथ अकेले ही मकान पर दखल करके रहने लगे । एकदम नदी के ऊपर ही मकान है । दीवालों से चिपटकर नदी की धारा बहती है ।

रात में वैद्यनाथ का शरीर झनझनाने लगा । सूने घर में सिरहाने के समीप दीपक जलाकर, मुँह पर चादर ओढ़ कर सो गए ।

परन्तु, किसी तरह नींद नहीं आई । आधी रात को जब सब कोलाहल थम गया, तब कहीं से एक झन्-झन् शब्द सुनकर, वैद्यनाथ चौंक पड़े । शब्द धीमा, परन्तु स्पष्ट था । जैसे पाताल में बलिराजा का कोषाध्यक्ष बैठा हुआ रुपये गिन रहा हो ।

वैद्यनाथ के मन को भय लगा, कौतूहल हुआ, एवं उसके साथ ही दुर्जय आशा का संचार हुआ । काँपते हुए हाथ में दीपक लेकर कमरे-कमरे में घूमे । इस कमरे में जाने पर लगता, शब्द उस कमरे से आ रहा है; उस कमरे में जाने पर लगता, इस कमरे से आ रहा है । वैद्यनाथ सारी रात इस कमरे से उस कमरे में घूमते रहे । दिन के समय वह पाताल-भेदी शब्द अन्य शब्दों के साथ मिल गया, फिर उसे पहिचाना नहीं जा सका ।

रात को दूसरे-तीसरे प्रहर जब संसार सो गया । तब फिर वही शब्द जाग्रत हो उठा । वैद्यनाथ का चित्त नितान्त अस्थिर

हो गया । शब्द को लक्ष्य करके किस ओर जाएँ सोच नहीं सके । मरुभूमि के बीच पानी की कल्लोल सुनाई पड़ रही है, परन्तु कहाँ से आ रही है इसका निर्णय नहीं हो पाता; डर लगता है, कहीं एक बार गलत रास्ता पकड़ लेने पर गुप्त निर्झरिणी एकदम अधिकार से बाहर चली जाएगी । प्यासा पथिक स्तब्धभाव से खड़े रह कर प्राणपण से कान खड़े किए हुए हैं और तृष्णा उत्तरोत्तर प्रबल होती जा रही है, वैद्यनाथ की भी वही अवस्था हुई ।

बहुत दिन अनिश्चित अवस्था में ही कट गए । केवल अनिद्रा एवं व्यर्थ के आश्वासन से उनके सन्तोष-स्निग्ध मुँह पर व्यग्रता का तीव्रभाव रेखांकित हो उठा । भीतर धँसे हुए चकित नेत्रों से मध्याह्न-कालीन मरुस्थल की बालू की तरह एक ज्वाला निकलने लगी ।

अन्त में एक दिन दोपहर को सब दरवाजे बन्द करके घर के भीतर साबर ठोंक-ठोंक कर शब्द करने लगे । एक समीपवर्ती छोटी-सी कोठरी के भीतर से धरती के पोली होने जैसे आवाज आई ।

रात्रि आधी बीत जाने के बाद वैद्यनाथ अकेले बैठकर उस पोली जमीन को खोदने लगे । जब रात पूरी बीतने को आई, तब पूरा गड्ढा खुद पाया ।

वैद्यनाथ ने देखा, नीचे एक कमरा जैसा है—परन्तु उस रात के अँधेरे में उसके भीतर बिना विचारे पाँव डालने का उन्होंने साहस नहीं किया । गड्ढे के ऊपर बिछौना डालकर सोगए । परन्तु, शब्द इस तरह प्रस्फुटित हो उठा कि भयभीत होकर वहाँ से उठ आए—परन्तु घर को सुरक्षित रख कर द्वार छोड़ कर दूर जाने की भी इच्छा नहीं हुई । लोभ एवं भय दोनों ओर से दोनों हाथ पकड़ कर खींचने लगे । रात कट गई ।

आज दिन में भी शब्द सुनाई पड़ रहा है । नौकर को घर के भीतर न घुसने देकर बाहर ही भोजनादि कर लिया । भोजनोपरान्त घर में घुसकर दरवाजे में ताला लगा दिया ।

दुर्गानाम का उच्चारण करके गड्ढे के मुँह से बिछौना हटा दिया । पानी का छल-छल् एवं धातुद्रव्य का ठन्-ठन् शब्द खूब स्पष्ट सुनाई पड़ा ।

डरते-डरते गड्ढे के समीप धीरे-धीरे मुंह ले जाकर देखा, थोड़ी नीचाई पर ही कोठरी के भीतर पानी का स्रोत बह रहा है—अँधेरे में और अधिक कुछ नहीं देख पाए ।

एक बड़ी लाठी डालकर देखा, पानी घुटने भर से अधिक नहीं है । एक दियासलाई और बत्ती लेकर उस कम गहरी कोठरी के भीतर अनायास ही कूद पड़े । पीछे कहीं एक ही क्षण में समस्त आशा बुझ न जाय, इसलिए बत्ती जलाते समय हाथ काँपने लगे ।

देखा, लोहे की एक मोटी साँकल से एक तांबे की बड़ी कलशी बँधी हुई है, कभी-कभी पानी का स्रोत प्रबल होता है एवं सांकल कलशी के ऊपर पड़कर शब्द उत्पन्न कर देती है ।

वैद्यनाथ पानी के ऊपर छप्-छप् शब्द करते-करते झटपट उस कलशी के समीप जा उपस्थित हुए । जाकर देखा, कलशी खाली है ।

तो भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सके—दोनों हाथों से कलशी उठा कर उसे खूब अच्छी तरह झकझोर डाला । भीतर कुछ भी नहीं था । उल्टा करके पकड़ा । कुछ भी नहीं गिरा । देखा, कलशी का गला नहीं है । जैसे एक समय इस कलशी का मुँह पूर्णतः बन्द रहा हो, किसी ने तोड़ डाला है ।

तब वैद्यनाथ पानी के भीतर दोनों हाथ डाल कर टटोलने लगे । कीचड़ में से कुछ हाथ में आया—एक कड़ी सी वस्तु, उठाकर देखा, मुर्दे की खोपड़ी थी—उसे भी एक बार कानों के

पास ले जाकर झकझोरा-भीतर कुछ भी नहीं था। उठाकर फेंक दी। बहुत टटोलने पर भी नर-कंकाल की हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं पा सके।

देखा, नदी की ओर दीवाल एक जगह से टूटी हुई है; वहाँ होकर पानी प्रविष्ट होता है एवं उनसे पूर्ववर्त्ती जिस व्यक्ति की जन्मपत्री में दैव-धन का लाभ होना लिखा था, उसने भी सम्भवतः उसी छिद्र से प्रवेश किया होगा।

अन्त में पूर्णतः हताश होकर 'माँ' कहते हुए एक बड़ी मर्मभेदी दीर्घनिःश्वास छोड़ी—उसकी प्रतिध्वनि जैसे अतीनकाल के और भी अनेक हताश व्यक्तियों की निःश्वास को एकत्रित करती हुई भीषण गंम्भीरता के साथ पाताल के भीतर से गूँज उठी।

सम्पूर्ण शरीर में पानी तथा कीचड़ भरे हुए वैद्यनाथ ऊपर आए।

जनपूर्ण कोलाहाल मय पृथ्वी उन्हें अत्यन्त मिथ्या एवं उस साँकल में बँधे फूटे घड़े के समान शून्य बोध होने लगी।

फिर चीज-वस्त बाँधनी पड़ेंगीं, टिकिट खरीदनी होगी, गाड़ी पर चढ़ना होगा, घर लौटना होगा, स्त्री के साथ वाक्-वितण्डा करना होगा, जीवन प्रतिदिन ढोना पड़ेगा, यह सब उन्हें असंह्य लगने लगा। इच्छा हुई, नदी के जीर्ण बालू के किनारे की भाँति झप् करके टूट कर पानी में जा पड़े।

परन्तु, तो भी उन्होंने चीज-वस्त बांधीं, टिकिट खरीदी एवं गाड़ी पर भी चढ़े।

एवं एक दिन सर्दी की सन्ध्या में घर के दरवाजे पर जा उपस्थित हुए। आश्विन मास में शरद् ऋतु के प्रातः काल में दरवाजे के पास बैठे हुए वैद्यनाथ ने अनेकों प्रवासियों को घर लौटते हुए देखा था, एवं लम्बी साँस लेते हुए मन ही

मन इस विदेश से देश में लौटने के सुख के लिए लाला-यित हुए थे—उस समय आज की सन्ध्या स्वप्न में भी अगम्य थी।

मकान में प्रवेश कर, आँगन के कोने में अबोध की भाँति बैठे रहे, अन्तःपुर में नहीं गए। सर्वप्रथम दासी ने उन्हें देख कर आनन्द का कोलाहल मचा दिया—लड़के दौड़े आए, गृहिणी ने बुला भेजा।

वैद्यनाथ का जैसे एक नशा उतर गया, वे फिर मानों अपनी उसी पुरानी गृहस्थी में जाग उठे।

सूखे मुँह पर म्लान-हँसी लिए, एक लड़के को गोद में लेकर, एक लड़के का हाथ पकड़ कर अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

उस समय घर में दीपक जल चुका था, एवं यद्यपि रात नहीं हुई थी, तथापि शीत ऋतु की सन्ध्या रात्रि की भाँति निस्तब्ध हो आई थी।

वैद्यनाथ कुछ देर तक कुछ नहीं बोले, उसके पश्चात् मृदु स्वर में स्त्री से पूछा, "कैसी हो?"

स्त्री ने उसका कोई उत्तर न देकर जिज्ञासा की, "क्या हुआ?"

वैद्यनाथ ने निरुत्तर हो सिर ठोंक लिया। मोक्षदा का मुख अत्यन्त कठोर हो उठा।

लड़के एक बड़े अकल्याण की छाया देखकर धीरे-धीरे उठ गए। दासी के पास जाकर बोले, "वही नाई की कहानी कहो।' और कह कर बिछौने पर सो गए।

रात होने लगी, परन्तु दोनों के मुँह पर कोई बात नहीं। घर के भीतर क्या एक छम्-छम्-सी होने लगी एवं मोक्षदा के दोनों ओठ वज्र की भाँति कठोर हो आए।

बहुत देर बाद मोक्षदा ने कोई बात न कह कर धीरे-धीरे शयनगृह के भीतर प्रवेश किया एवं भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया ।

वैद्यनाथ चुपचाप बाहर खड़े रहे । चौकीदार आवाज लगाकर चला गया । श्रान्त पृथ्वी अकातर निद्रा में मग्न हो गई । अपने आत्मीय से आरंभ करके अनन्त आकाश के नक्षत्रों तक में से किसी ने भी इस लांछित निद्रा-हीन वैद्यनाथ से एक भी बात नहीं पूछी ।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्न से जगकर वैद्यनाथ के बड़े लड़के ने शय्या से उठकर धीरे-धीरे बरामदे में आकर पुकारा, "पिताजी ।" परन्तु कोई उत्तर नहीं पाया ।

फिर डरकर बिछौने पर जाकर सो गया ।

पूर्व प्रथानुसार दासी ने सवेरे के समय तम्बाकू भर कर उन्हें ढूँढ़ा, कहीं भी नहीं दिखाई पड़े । दिन चढ़ने पर पड़ौसी लोग घर लौटे हुए बन्धु की खोज खबर के लिए आए, परन्तु वैद्यनाथ से उनका साक्षात्कार नहीं हुआ ।

———

मुकुट

१

त्रिपुरा के राजा अमरमाणिक्य के छोटे पुत्र राजधर ने सेनापति ईसा खाँ से कहा, "देखो, सेनापति, मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ, कि तुम मेरा अपमान मत किया करो।"

पठान सेनापति ईसा खाँ कुछ तीरों को हाथ में लिए हुए उनकी धार देख रहे थे। राजधर की बात सुनकर उन्होंने कुछ कहा नहीं, केवल मुँह उठाकर भौंहें चढ़ाते हुए राजपुत्र के चेहरे की ओर एक बार देख भर लिया, फिर दूसरे ही क्षण सिर झुका कर अपने काम की धुन में लग गए।

राजधर ने कहा, "भविष्य में यदि तुमने मुझे कभी नाम लेकर पुकारा, तो मुझे उसके लिए उचित व्यवस्था करनी पड़ेगी।"

वृद्ध ईसा खाँ ने अचानक मस्तक उठाकर मेघ-गर्जन जैसे स्वर में कहा, "अच्छा।"

राजधर ने अपनी तलवार की म्यान को खट् से संगमरमर के फर्श पर ठोकते हुए उत्तर दिया, "हाँ ।"

इस बालक का इस तरह से छाती फुलाना एवं तलवार ठोकना देखकर ईसा खाँ से नहीं रहा गया, वे अट्टहास कर उठे । इससे राजधर का सम्पूर्ण चेहरा, यहाँ तक कि आँखों की श्वेत कौड़ियाँ तक लाल हो उठीं । वे परिहास की हँसी हँसते हुए हाथ जोड़ कर बोले, "महामान्य महाराजाधिराज को क्या कह कर पुकारना होगा ? हुजूर, जनाब, जहांपनाह, बादशाह—"

राजधर ने अपने स्वाभाविक कर्कश-कण्ठ स्वर को दूना कर्कश करते हुए कहा, "मैं तुम्हारा शिष्य अवश्य हूँ, परन्तु यह भी स्मरण रक्खो कि मैं राजकुमार हूँ । तुम्हें इस बात को हर समय ध्यान में रखना चाहिए ।"

ईसा खाँ पुन: गरज उठे, "बस चुप रहो । अधिक बकवास मत करो । मुझे और भी बहुत से काम हैं ।" और, वे पुन: अपने कार्य में संलग्न हो गए ।

इतने में राजकुमार इन्द्रकुमार भी वहाँ आ पहुँचा । लम्बा-चौड़ा बलिष्ठ सुडौल शरीर और ओठों पर मुस्कान । सिर हिलाते हुए बोला, "खाँ साहब, आज क्या बात है ?"

इन्द्रकुमार का स्वर सुनकर वृद्ध सेनापति ने तीरों को एक ओर रख कर, स्नेहपूर्वक छाती से लगाते हुए कहा, "सुनो बेटा, सुनो, बड़े मजे की बात है । तुम्हारे इन छोटे भाई चक्रवर्त्ती महाराज को यदि जहाँपनाह अथवा महाराज न कहा जाए तो इनकी अप्रतिष्ठा होती है ।" यह कह कर वे पुन: तीर उठाकर उनकी धार देखने लगे ।

"यह बात है"—कह कर इन्द्रकुमार खूब जोर से हँस पड़ा ।

राजधर ने अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए कहा, "भाई साहब, चुप रहिए।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "राजधर, क्या अब तुम्हें जहाँपनाह कहना पड़ेगा? हाः हाः हाः।"

राजधर काँपने लगा, बोला, "भाई साहब, मैं कहता हूँ, आप चुप रहें!"

इन्द्रकुमार फिर हँस दिया, बोला, "जनाब!"

राजधर अधीर हो उठा, बोला, "भाई साहब, आपको तनिक भी शिष्टता नहीं है।"

इन्द्रकुमार फिर हँसा और राजधर की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला, "थोड़ा शान्त हो जाओ भाई, शान्त हो जाओ। अपनी शिष्टता को तुम अपने पास ही रहने दो। मैं उसे छीनना नहीं चाहता।"

ईसा खाँ ने अपने कार्य को चालू रखते हुए राजधर की ओर कनखियों से देखकर, हँसते हुए कहा, "आजकल इनकी शिष्टता बहुत अधिक बढ़ गई है।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "हम लोगों की पहुँच के बाहर हो गई है।"

राजधर क्रोध में भर कर बड़बड़ाता हुआ चला गया। उसकी चाल की धमक से म्यान के भीतर तलवार तक झन-झना उठी।

२

राजकुमार राजधर की आयु है उन्नीस वर्ष की। उनका रंग गेहुँआ, शरीर नाटा और मजबूत गठा हुआ है। बाल

बहुत छोटे, मोटे तथा सीधे खड़े हुए हैं। आँखें छोटी-छोटी हैं, परन्तु उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण है। दाँत कुछ बड़े हैं। कण्ठ-स्वर बाल्यावस्था से ही कर्कश तथा भारी है। लोगों का अनुमान है कि उसका मस्तिष्क बहुत तेज है और उसकी स्वयं की भी यही धारणा है। इस बुद्धि के बल पर ही वह अपने दोनों बड़े भाइयों को स्वयं से हेय समझता है। राजधर के प्रबल प्रताप से राजभवन के सब लोग संत्रस्त रहते हैं। आवश्यकता हो या न हो, वह अपनी तलवार को पृथ्वी पर ठोकते हुए सर्वत्र अपना प्रभुत्व जमाता रहता है। राजभवन के सभी दास-दासी उसे हर समय 'राजा, 'महाराजा' कह कर, हाथ जोड़ कर तथा सलामी बजाकर हर समय प्रसन्न रखने का भरसक प्रयत्न करते रहते हैं, फिर भी उन्हें चैन नहीं मिल पाता। सभी बातों में छोटे राजकुमार का हाथ रहता है एवं सभी बातों में वह अपना प्रभुत्व रखना चाहता है। इस सम्बन्ध में वह आँखों का लिहाज तक खो चुका है। एकबार युवराज चन्द्रनारायण के एक घोड़े पर उसने अपना अधिकार जमा लिया, उस समय युवराज केवल हँस कर रह गए, कुछ कहा नहीं। एक और दिन की बात है, उसने जब राजकुमार इन्द्रकुमार के चाँदी से मढ़े हुए धनुष तथा बाणों पर अपना अधिकार जमा लिया तो इन्द्रकुमार ने अत्यन्त रुष्ट होते हुए कहा, "देखो, जिस वस्तु को तुम ले चुके, उसे तो मैं वापिस नहीं चाहता, परन्तु यह स्मरण रखना कि यदि भविष्य में मेरी किसी वस्तु से हाथ लगाया तो मैं ऐसा कर दूँगा कि फिर उस हाथ से कोई वस्तु ही नहीं उठा सकोगे। परन्तु राजधर बड़े भाइयों की बात पर कोई ध्यान ही नहीं देता। उसका आचरण देखकर लोग छिपे-छिपे कहा करते, छोटे राजकुमार का जन्म राजा के घर अवश्य हुआ है, परन्तु उनमें राजपुत्रों जैसी कोई

बात ही दिखाई नहीं देती ।"

परन्तु महाराज अमरमाणिक्य राजधर को कुछ अधिक प्यार करते हैं, यह बात राजधर को ज्ञात है । आज उसने पिता के पास जाकर ईसा खाँ के विरुद्ध शिकायत की ।

राजा ने ईसा खाँ को बुलाकर कहा, "सेनापति, राजकुमार की आयु अब अधिक हो गई है । अब तुम्हें इनका यथोचित सम्मान करना चाहिए ।"

ईसा खाँ ने कहा, "महाराज, स्वयं बाल्यावस्था में जब मुझ से युद्ध-क्रियाएँ सीखा करते थे, उस समय मैं महाराज का जितना सम्मान करता था, इस समय राजकुमारों का भी उससे कुछ कम सम्मान नहीं करता ।"

राजधर ने कहा, "मेरा कहना है, तुम मुझे नाम लेकर मत पुकारा करो ।"

ईसा खाँ ने अत्यन्त शीघ्रता से राजधर की ओर मुड़ते हुए कहा, "चुप रहो, बच्चे, मैं तुम्हारे पिता से बातें कर रहा हूँ । महाराज, क्षमा कीजिएगा, आपका यह छोटा पुत्र राजवंश के योग्य नहीं बन सका । इसके हाथ में तलवार शोभा नहीं देती । हाँ, बड़े होने पर यह मुंशियों जैसी कलम अवश्य चला सकेगा, और किसी काम नहीं आ सकता ।"

इतने में युवराज चन्द्रनारायण एवं इन्द्रकुमार भी वहाँ आ पहुँचे ।

वृद्ध ईसा खाँ ने उनकी ओर मुड़ते हुए कहा, "इधर देखिए, महाराज ये राजपुत्र हैं ।"

महाराज ने राजधर की ओर देखते हुए कहा, "राजधर सेनापति क्या कह रहे हैं । तुम संभवतः अपनी अस्त्र-शिक्षा द्वारा इन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सके हो ।"

राजधर ने कहा, "महाराज आप धनुर्विद्या में हम सब

की परीक्षा ले लीजिए ! यदि मैं परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध न होऊँ, तो आप मुझे त्याग दीजिएगा।"

महाराज ने कहा, "अच्छी बात है, अगले सप्ताह परीक्षा ली जाएगी। तुम तीनों में से जो भी उत्तीर्ण होगा, उसे मैं हीरों से जड़ी तलवार पुरस्कार में दूँगा।"

———

३

इन्द्रकुमार धनुर्विद्या में असाधारण दक्ष था। सुनते हैं, एक बार उसके किसी अनुचर ने राजभवन की छत से एक स्वर्ण-मुहर नीचे फेंकी थी, उसे पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही इन्द्रकुमार ने तीर मार कर सौ हाथ की दूरी पर फेंक दिया था। राजधर आवेश में भर कर पिता के समक्ष दम्भ तो कर आया, परन्तु उसके मन में बड़ी खलबली मच गई। युवराज चन्द्रनारायण के सम्बन्ध में वह बिलकुल निश्चिन्त था, उन्हें तीर चलाना अच्छा नहीं आता, परन्तु इन्द्रकुमार पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। राजधर ने बहुत कुछ सोच-विचार करने के उपरान्त एक उपाय खोज निकाला और मन ही मन हँसते हुए कहा, "मुझे तीर चलाना न आता हो परन्तु मेरी बुद्धि तो तीर से भी अधिक पैनी है, मैं उसी के बल पर लक्ष्यभेद कर लूँगा।"

कल परीक्षा का दिन है। ईसा खाँ, युवराज एवं इन्द्रकुमार आदि उस स्थल की जाँच करने के लिए गए, जहाँ कल परीक्षा होनी है। राजधर भी वहाँ पहुँच गया और बोला, "भाई साहब आज पूर्णिमा है, आजके दिन गोमती नदी में शेर पानी पीने आते हैं, यदि आज हम लोग नदी-तट पर शेर का शिकार

करने चलें तो कैसा रहे ?"

इन्द्रकुमार को अत्यन्त आश्चर्य हुआ; कहा, "बड़े आश्चर्य की बात है। आज राजधर को शिकार की बात कैसे सूझी। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ !"

ईसा खाँ ने राजधर के प्रति घृणा-मिश्रित कटाक्ष करते हुए कहा, "राजकुमार राजधर; शिकारी, नहीं ! यह तो जाल बिछा कर घर में ही शिकार किया करते हैं। इनका शिकार बहुत जबर्दस्त होता है। दरबार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो इनके जाल में नहीं फँसा हो।"

चन्द्रनारायण ने देखा, बात राजधर के चुभ गई है और इससे उसका हृदय व्यथित हो उठा है। उन्होंने कहा, "सेनापति महोदय, जैसी आपकी तलवार है, वैसी ही बात भी है; दोनों की धार अत्यन्त तेज है, जिस पर जाकर पड़े उसके टुकड़े करके ही छोड़ती हैं।"

राजधर ने हँसते हुए कहा, "नहीं भाई साहब, मेरे लिए अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। खाँ साहब बात तो बहुत पैनी कहते हैं. परन्तु मेरे कानों में वह रुई की फुरहरी से अधिक नहीं लगती।"

ईसा खां अचानक क्रुद्ध होकर मूछों पर ताव देते हुए बोले "तुम्हारे कान भी हैं क्या ? यदि होते तो मैं अब तक कब का तुम्हें सीधा कर देता।" वृद्ध ईसा खां किसी को भी खातिर में नहीं लाते।

इन्द्रकुमार अट्टहास कर उठा। चन्द्रनारायण गम्भीर बने रहे, कुछ कहा नहीं। युवराज को रुष्ट होते देखकर, इन्द्रकुमार उसी समय अपनी हँसी रोक कर उनके समीप जा पहुँचा और सुमिष्ठ-स्वर में बोला, "भाई साहब, आपकी क्या सम्मति है ? क्या आज रात को शिकार के लिए चला जाय ?"

चन्द्रनारायण ने कहा, "भाई तुम्हारे साथ शिकार के लिए जाना तो व्यर्थ है। हमारा शिकार तो एकदम निरामिष होता है। तुम वन में जाकर जानवर मार कर लाते हो और हम लोग लाते हैं केवल कद्दू, लौकी, कटहल आदि।"

ईसा खां अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसने लगे तथा स्नेहपूर्वक इन्द्रकुमार की पीठ ठोकते हुए बोले, "युवराज ने बात बिल्कुल ठीक कही है, बेटा, तुम्हारा तीर सब से आगे चलता है एवं ठीक लक्ष्य पर जा पहुँचता है। भला, तुम से कौन जीत सकता है ?"

इन्द्रकुमार ने कहा, "नहीं, नहीं, भाई साहब, हँसी की बात नहीं, जाना ही पड़ेगा। यदि आप शिकार को नहीं जायेंगे तो कौन जाएगा ?"

युवराज बोले, "अच्छा चलूँगा। आज राजधर को शिकार का शौक हुआ है, हम इसे निराश नहीं करेंगे।"

हँसते हुए इन्द्रकुमार का मुख उसी समय उदास होगया। बोला, "क्यों, भाई साहब, मेरी इच्छा होती तो आप नहीं जाते ?"

चन्द्रनारायण ने कहा, "यह तुम कैसी बातें करते हो, भाई, तुम्हारे साथ तो मैं नित्य ही शिकार के लिए जाता हूँ।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "इसीलिए वह पुराना पड़ गया है क्यों ?"

चन्द्रनारायण कुछ उदास हो गए, कहा, "तुम मेरी बात को इस प्रकार गलत समझने लगते हो, इससे मुझे बड़ी चोट लगती है।"

इन्द्रकुमार ने पुनः हंसते हुए शीघ्रता से कहा, "नहीं, भाईसाहब, मैं तो हँसी कर रहा था। मैं शिकार के लिए अवश्य चलूँगा। चलिए, चल कर तैयारी करें।"

ईसा खाँ ने मन ही मन कहा, "इन्द्रकुमार अपने वक्ष पर

सहस्रों तीर झेल सकता है, परन्तु बड़े भाई का अनादर उससे तनिक भी नहीं सहा जाता ।"

४

जब शिकार का सब प्रबन्ध हो चुका, तब राजधर धीरे-धीरे इन्द्रकुमार की पत्नी के महल में पहुँचा । कमलादेवी ने हँसते हुए कहा, "आज यह क्या कुँवरजी ! एकदम धनुष-बाण से लैस होकर आए हो ! क्या बात है मुझे मारोगे क्या ?"

राजधर ने कहा, "भाभीजी, आज हम तीनों भाई शिकार के लिए जा रहे हैं इसी से...।"

कमलादेवी ने आश्चर्यचकित होते हुए कहा, "तीनों भाई ! तुम भी जाओगे क्या ? आज तीनों भाई इकट्ठे होंगे ! यह तो अच्छे लक्षण नहीं हैं । आज यह त्र्यहस्पर्श कैसे ?"

राजधर ऐसा खुलकर हँसा जैसे कोई एक बड़ा मजाक हो गया हो । परन्तु कुछ कहा नहीं ।

कमलादेवी ने कहा, "नहीं नहीं, यह नहीं हो सकता—नित्यप्रति वे तो शिकार खेलने जाते हैं और मैं घर में बैठी चिन्ता के मारे मरती रहूँ ।"

राजधर ने कहा, "विशेष कर आज का शिकार रात में होगा ।"

कमलादेवी ने सिर हिलाते हुए कहा, "किसी तरह भी नहीं । देखूँ आज वे कैसे जाते हैं ।"

राजधर ने कहा, "भाभीजी, एक काम कीजिए, आज

उनका धनुष-बाण कहीं छिपा दीजिए ।"

कमलादेवी ने कहा, "कहाँ छिपाऊँ ?"

राजधर बोला, ;मुझे दे दीजिए, मैं छिपा कर रख दूँगा।"

कमलादेवी हँस दी, बोली, "यही ठीक है। बड़ा मजा आएगा ।" परन्तु मन ही मन सोचा, "अवश्य ही इस कार्य में तुम्हारा कोई कुविचार निहित है। तुम केवल मेरे उपकार के लिए ही यहाँ आए हो, ऐसा तो नहीं लगता ।"

'चलो अस्त्र-शाला में चलो"--कहती हुई कमलादेवी राजधर को साथ लेकर अस्त्र-शाला की ओर चलदी। ताली लगाकर उसने अस्त्र-शाला का द्वार खोला, राजधर ने ज्योंही भीतर पाँव रक्खा, त्योंही कमलादेवी ने बाहर से ताला बन्द कर दिया। राजधर भीतर बन्द हो गया । कमलादेवी ने बाहर से हँसते हुए कहा, "कुँवरजी, अब मैं जाती हूँ ।"

सन्ध्या के समय इन्द्रकुमार अन्तःपुर में पहुँच कर अस्त्र-शाला की चाभी ढूँढ़ने लगा। कमलादेवी ने हँसते हुए पूछा, "क्यों, क्या बात है ? मुझे ढूंढ़ रहे हो क्या ? मैं खो तो नहीं गई हूँ !"

शिकार का समय निकला जा रहा था, अतः इन्द्रकुमार दूनी तत्परता से चाभी ढूँढ़ने लगा । कमलादेवी पति के सामने आ खड़ी हुई और हँसती हुई बोली, "अजी, मैं कहती हूँ, सुनाई नहीं देता क्या ? आँखों के सामने ही तो खड़ी हूँ, फिर भी सारे महल में नाचते क्यों फिर रहे हो—बात क्या है आखिर ? अन्त में इन्द्रकुमार को पराजित होकर प्रार्थना के स्वर में कहना पड़ा, "देवी, इस समय छेड़छाड़ मत करो — मेरी एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु खोगई है ।"

कमलादेवी ने कहा, "मुझे पता है कि तुम्हारा क्या खो गया है ! मेरी एक बात मानो तो मैं उसे तुम्हें ढूंढ़ कर दे

सकती हूँ ।"

इन्द्रकुमार बोला, "अच्छा मानूँगा ।"

कमलादेवी ने कहा, "तो सुनो, आज तुम शिकार खेलने नहीं जा सकते । यह लो अपनी चाभी ।"

इन्द्रकुमार बोला, "यह नहीं होगा, मैं तुम्हारी यह बात नहीं मान सकता ।"

कमलादेवी ने कहा, "चन्द्रवंश में जन्म लेकर तुम्हारा ऐसा आचरण ! एक साधारण-सी प्रतिज्ञा की भी रक्षा नहीं कर सकते ?"

इन्द्रकुमार ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, तुम्हारी ही बात रही । मैं आज शिकार को नहीं जाऊँगा, बस ।"

कमलादेवी ने कहा, "तुम लोगों का और क्या खोया है, उसे भी याद कर देखो ।"

इन्द्रकुमार बोला, "और तो कुछ याद नहीं पड़ता ।"

कमलादेवी ने कहा, "अजी, वे तुम्हारे लाड़ले भाई कहाँ हैं, सोने के चाँद ?"

इन्द्रकुमार ने मुस्कुराते हुए गरदन हिलाकर सङ्केतरूप में पूछा, "कहाँ है ?"

कमलादेवी बोला, "तो आओ मेरे साथ दिखाऊँ ।"

कमलादेवी ने अस्त्रशाला का द्वार खोल दिया । इन्द्रकुमार ने देखा राजधर फर्श के ऊपर चुपचाप बैठा हुआ है । देखकर जोर से हँसते हुए कहा, "यह क्या, राजधर, अस्त्र-शाला में कैसे बन्द होगए ?"

कमला देवी ने कहा, "ये हम लोगों के ब्रह्मास्त्र हैं ।"

इन्द्रकुमार बोला, "बात तो ठीक है । यहाँ के सब अस्त्रों की अपेक्षा इनकी धार कहीं अधिक है ।"

राजधर ने मन ही मन कहा, "तुम लोगों की जीभ से

अधिक नहीं ।" राजधर बाहर निकल आया, 'जान बची और लाखों पाये' वाली कहावत हुई ।

तभी कमलादेवी ने गंभीर होकर पति से कहा, "नहीं आज तुम शिकार के लिए अवश्य जाओ । मैं तुम्हारा 'वचन' तुम्हें लौटाती हूँ ।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "शिकार खेलूँ ? अच्छा खेलता हूँ ।" कहकर उन्होंने धनुष पर तीर चढ़ाया और उसे बहुत ही धीरे से कमलादेवी की ओर फेंक दिया । तीर उनके पाँवों के पास जाकर गिरा । इन्द्रकुमार ने कहा, "मेरा लक्ष्य भ्रष्ट हो गया ।"

कमलादेवी बोली, "नहीं, हँसी की बात नहीं । तुम शिकार के लिए अवश्य जाओ ।"

इन्द्रकुमार ने कोई उत्तर नहीं दिया । धनुष-बाण को एक ओर फेंक कर वह बाहर निकल गया । सीधा युवराज के पास पहुँचकर बोला, "भाई साहब, आज शिकार की सुविधा नहीं मिली ।"

चन्द्रनारायण ने मुस्कुराते हुए कहा, "समझ गया ।"

———

५

आज परीक्षा का दिन है । राजप्रसाद के बाहर वाले मैदान में बड़ी भारी भीड़ लगी है । महाराज का छत्र एवं सिंहासन प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान चमक रहा है । पहाड़ी स्थान है—ऊँचा-नीचा । चारों ओर मनुष्यों के मस्तक ही मस्तक दिखाई दे रहे हैं । लड़के वृक्षों पर चढ़ गए हैं । एक लड़के ने डाली पर से झुक कर एक मोटे से आदमी के मस्तक पर बँधी

हुई पगड़ी उतार कर दूसरे के मस्तक पर रख दी। जिसकी पगड़ी थी, उसने लड़के को पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु व्यर्थ रहा। अन्त में निराश होकर उसने डाली को पकड़ कर जोर-जोर से हिलाना आरम्भ कर दिया। उत्तर में लड़के ने बन्दर की भाँति नकल करते हुए दाँत दिखा दिए। उस मोटे आदमी की दुर्दशा देखकर बहुत लोग हँसने लगे। स्थान-स्थान पर ऐसी ही मनो-रंजक घटनाएँ हो रहीं थीं, इतने ही में दूर से महाराज आते हुए दृष्टिगोचर हुए। उनके पीछे सभासदगण तथा धनुष-बाण लिए हुए तीनों राजकुमार थे। तत्पश्चात् झण्डे लिए हुए सिपाही आए, भाट आए, और सेना आई—जो एक पंक्ति में पीछे की ओर खड़ी होगई। बाजे वालों ने बाजे बजाना आरम्भ कर दिया। बड़ी भारी धूम मच गई। भीड़ ने उसी समय महाराज के प्रति-सम्मान प्रदर्शित किया और सब लोग शान्त होगए।

परीक्षा-समय आते ही ईसा खाँ ने राजकुमारों से तय्यार होने के लिए कहा।

इन्द्रकुमार ने युवराज से कहा, "भाई साहब, आज आपको जीतना ही है, अन्यथा काम नहीं चलेगा।"

युवराज ने हँसते हुए उत्तर दिया, "नहीं चलेगा तो क्या हुआ। मेरे एक छोटे से तीर के लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाने पर भी संसार ठीक उसी प्रकार चलता रहेगा, जिस प्रकार अब चल रहा है और न भी चले, तो भी मेरे जीतने की तो कोई आशा ही नहीं ज्ञात होती।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "भाई साहब, यदि आप हारे तो मैं जान बूझ कर लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाऊँगा।"

युवराज ने इन्द्रकुमार का हाथ पकड़ते हुए कहा, "नहीं, भाई ऐसा लड़कपन मत कर बैठना। कम से कम उस्ताद का नाम तो रखना ही पड़ेगा।"

राजधर का मुख चिन्ता के मारे विवर्ण हो गया था, वह बेचारा चुपचाप खड़ा हुआ था।

ईसा खाँ ने राजकुमारों के सामने आकर कहा, "युवराज, समय हो चुका है, धनुष उठाओ।"

युवराज ने इष्टदेव का नाम लेते हुए धनुष सँभाला। प्रायः दो सौ हाथ की दूरी पर पाँच-सात केले के खंभे एकत्र बँधे रक्खे थे। उनके बीच में एक पत्ता लगाया गया था। उस पत्ते के बीच में काले रंग से एक आँख बनाई गई थी एवं उस आँख के भीतर एक बिन्दु रख दिया गया था। बाण उसी बिन्दु पर लगना चाहिए।

युवराज ने बाण चढ़ाया, लक्ष्य स्थिर किया तथा छोड़ दिया, बाण लक्ष्य के ऊपर से निकल गया। ईसा खाँ का दाढ़ी-मूँछ युक्त चेहरा विकृत हो उठा, श्वेत भौंहें भी सिकुड़ गईं, परन्तु वे कुछ बोले नहीं। इन्द्रकुमार ने चेहरे को उदास बनाते हुए ऐसा भाव धारण किया, जैसे उन्हें लज्जित करने के लिए ही बड़े भाई ने ऐसा किया हो। वह अस्थिर होकर, अपने धनुष को हिलाता हुआ ईसा खाँ से बोला, भाई साहब ध्यान देते तो लक्ष्य पर बाण अवश्य मार सकते थे, परन्तु उनका तो उधर कुछ ध्यान ही नहीं था।"

ईसा खाँ ने रुष्ट होते हुए कहा, "तुम्हारे भाई का दिमाग और सब जगह ठीक रहता है, केवल बाण चलाते समय ही अपने स्थान पर नहीं टिकता। इसका कारण यह है कि उसमें सूक्ष्मा की कमी है।"

इन्द्रकुमार कुछ अधिक रुष्ट होकर कोई उत्तर देना चाहता था; परन्तु ईसा खाँ इस बात को ताड़ गए। वे झटपट राजधर के सामने पहुँचकर बोले, "कुमार, अब तुम चलाओ, महाराज देखें तो सही।"

राजधर ने कहा, "पहले छोटे भाई चला लें, उसके बाद—"

ईसा खाँ रुष्ट होकर बोले, "यह जवाब-सवाल का समय नहीं है। मेरे हुक्म की तामील करो।"

राजधर को भी क्रोध आ गया, परन्तु कुछ कहा नहीं। धनुष-बाण सँभाल कर लक्ष्य स्थिर किया तथा बाण छोड़ दिया। वह जाकर मिट्टी में घुस गया।

युवराज ने राजधर से कहा, "तुम्हारा तीर थोड़ा हट कर गिरा—कुछ और इधर होने पर ठीक लक्ष्यबिन्दु पर जा लगता।"

राजधर ने बिना किसी संकोच के कहा, "लक्ष्य तो ठीक बैठा है। दूर से दिखाई नहीं पड़ रहा है।"

युवराज ने कहा, "नहीं, यह तुम्हारा दृष्टि-भ्रम है। लक्ष्य ठीक नहीं बैठा।"

राजधर ने कहा, "नहीं, मैं ठीक कह रहा हूँ। पास जाकर देखने पर मेरी बात सत्य-सिद्ध होगी।"

युवराज ने फिर कुछ नहीं कहा।

अन्त में ईसा खाँ के आदेशानुसार इन्द्रकुमार को अत्यन्त अनिच्छापूर्वक धनुष उठाना पड़ा। युवराज ने उसके समीप जाकर कातर-स्वर में कहा, "भाई, मैं अक्षम हूँ, मुझ पर रुष्ट होना अन्याय है, तुम यदि लक्ष्य न बेध सके तो तुम्हारा वह लक्ष्य-भ्रष्ट तीर मेरे हृदय में आकर लगेगा, यह तुम निश्चित समझना।"

इन्द्रकुमार ने भाई के चरण-स्पर्श करते हुए कहा, "भाई साहब, आपके आशीर्वाद से आज मैं लक्ष्य को अवश्य बेधूँगा, इसमें सन्देह नहीं है।"

इन्द्रकुमार ने तीर छोड़ा, वह ठीक लक्ष्य पर जा कर लगा। बाजे बजने लगे, चारों ओर जयध्वनि होने लगी। जब युवराज

ने इन्द्रकुमार का आलिङ्गन किया, उस समय आनन्दातिरेक से उनकी आँखों में आँसू भर आए।

वृद्ध ईसा खाँ ने अत्यन्त स्नेह पूर्वक कहा, "कुमार-ईश्वर की कृपा से तुम चिरजीवी रहो।"

जिस समय महाराज इन्द्रकुमार को पुरस्कार देने को प्रस्तुत हुए उसी समय राजधर ने उनके सम्मुख पहुँच कर कहा, "महाराज, आप लोगों को भ्रम हुआ है। लक्ष्य पर तो मेरा बाण ही ठीक बैठा है।"

महाराज बोले, "यह असत्य है।"

राजधर ने कहा, "महाराज, समीप जाकर देखेंगे तो इसका प्रमाण मिल जाएगा।"

सब लोग लक्ष्य के समीप पहुँचे। देखा, जो तीर मिट्टी में बिधा था, उस पर इन्द्रकुमार का नाम है और जो लक्ष्य पर लगा था, उस पर राजधर का नाम अङ्कित है।

राजधर ने कहा, "अब विचार कीजए, महाराज।"

ईसा खाँ बोले, "अवश्य ही तरकश बदल गया है।"

परन्तु परीक्षा करके देखा गया तो पता चला तरकश नहीं बदला है। सब लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

ईसा खाँ ने कहा, "फिर से परीक्षा की जानी चाहिए।"

राजधर ने अत्यन्त दम्भ के साथ कहा, "मैं इस के लिए तय्यार नहीं हूँ। यह वहुत बड़ा अन्याय है। मुझ पर अविश्वास! मैं पुरस्कार नहीं चाहता, पुरस्कार मँझले राजकुमार को ही दे दिया जाय।" यह कह कर उसने पुरस्कार की तलवार इन्द्रकुमार की ओर बढ़ा दी।

इन्द्रकुमार ने अत्यन्त घृणापूर्वक कहा, "छीः छीः! तुम्हारे हाथ के पुरस्कार को पूछता कौन है? इसे तुम्हीं अपने पास रक्खो।" यह कहते हुए उसने तलवार को झट् से राजधर के

पाँव के समीप फेंक दिया।

राजधर ने मुस्कुराते हुए भाई को नमस्कार किया एवं तलवार उठाली।

तभी इन्द्रकुमार ने कम्पित-कण्ठ से पिता से कहा, "महाराज, अराकान के राजा से शीघ्र ही युद्ध छिड़ने वाला है। मैं उस युद्ध में विजयी होकर पुरस्कार प्राप्त करूँगा। महाराज मुझे जाने की आज्ञा दें।"

तभी ईसा खाँ ने इन्द्रकुमार का हाथ पकड़ते हुए कहा, 'आज तुमने महाराज का अपमान किया है। तुमने उनकी तलवार छू ली है। तुम्हें इसका दण्ड मिलना चाहिए।"

इन्द्रकुमार ने झटके से अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, "वृद्ध सेनापति, मेरा स्पर्श मत करो।"

वृद्ध ईसा खाँ का चेहरा उतर गया क्षुब्ध स्वर में बोले, "कुमार, यह क्या ? मेरे साथ ऐसा व्यवहार ! आज तुम्हें हो क्या गया, बेटा ! ऐसी बहकी बातें क्यों कर रहे हो ?"

इन्द्रकुमार की आँखों में आँसू भर आये। कहा, "सेनापति महोदय, मुझे क्षमा करें, 'मैं सचमुच ही बहक गया था।"

युवराज ने स्नेह पूर्वक कहा, "शान्त हो जाओ भाई, चलो घर चलें।"

इन्द्रकुमार ने पिता के चरण छूते हुए कहा, "पिताजी, मेरा अपराध क्षमा करदें।" और लौटते समय युवराज से कहा, "भाई साहब, आज मेरी सचमुच पराजय हुई है।"

राजधर किस तरह जीता, सो किसी की समझ में नही आया।

६

परीक्षा के एक दिन पूर्व, कमलादेवी की सहायता से राजधर जब अस्त्र-शाला में घुसा था, तभी इन्द्रकुमार के तरकश में से एक तीर बदल लाया था तथा बदले में उसके तरकश में अपना एक तीर ऐसे ढंग से रख आया था कि जिस पर सब से पहले सरलता पूर्वक उसका हाथ जा पड़े। राजधर ने जो सोचा था, ठीक वही हो गया।

इन्द्रकुमार ने दैववशात् वही तीर उठाया, जिसे राजधर रख आया था, परिणाम स्वरूप परीक्षा के समय उसकी हार सिद्ध हुई। कुछ समय पश्चात् जब वातावरण शान्त हो गया, तब इन्द्रकुमार को राजधर की चालाकी समझ में आगई, परन्तु उसने किसी से कुछ कहा नहीं, केवल राजधर के प्रति उसकी घृणा और अधिक बढ़ गई।

इन्द्रकुमार महाराज से बारम्बार कहने लगा, "महाराज मुझे अराकान के युद्ध में भेज दीजिए।"

महाराज विचार करने लगे।

यह लग भग तीन सौ वर्ष पुरानी कहानी है। उस समय त्रिपुरा स्वाधीन था. एवं चटगाँव का इलाका त्रिपुरा के अधीन था। अराकान चटगाँव से लगा हुआ है। अराकान का राजा प्रायः ही चटगाँव पर चढ़ाई कर दिया करता था, अतः अराकान और त्रिपुरा राज्य में सदैव विरोध बना रहता था। कुछ दिन हुए, फिर से विरोध उठ खड़ा हुआ था तथा युद्ध की संभावना देख कर इस बार इन्द्रकुमार ने प्रस्ताव किया था कि वह भी युद्ध में भाग लेगा। महाराज ने बहुत-कुछ सोच-विचार करने के बाद स्वीकृति देदी तीनों भाई पाँच-पाँच हजार, अर्थात् कुल पन्द्रह हजार सैनिकों को साथ लेकर चटगाँव की ओर चल दिए। ईसा खाँ

को प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया था।

कर्णफली नदी के पश्चिमी तट पर पड़ाव डाला गया। अराकान की कुछ सेना इस पार थी, और कुछ उस पार। अराकान का राजा थोड़ी-सी सेना के साथ उस पार टिका था एवं इसके बाईस हजार सैनिक युद्ध के लिए तय्यार होकर पश्चिमी-तट पर आक्रमण करने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

युद्ध-क्षेत्र पर्वतमय था। आमने-सामने के दो पर्वतों पर दोनों पक्षों की सेनाएं युद्ध की तैयारियाँ करने लगीं। यदि दोनों पक्ष युद्ध आरम्भ करदें तो बीच की उपत्यका में संघर्ष छिड़ सकता था। पर्वत के चारों ओर हरड़, आँवला, शाल एवं खंभारी का जंगल था। बीच २ में अनेकों छोटे-छोटे गांव थे, परन्तु इस समय ग्रामवासी अपनी झोंपड़ियों को खाली करके भाग गए थे। कहीं-कहीं खेत भी थे। दाईं ओर कर्णफूली नदी थी एवं बाईं ओर दुर्गम पर्वत।

एक सप्ताह हो गया। दोनों पक्ष अपनी सुविधानुसार आक्रमण की प्रतीक्षा में डटे हुए हैं। इन्द्रकुमार युद्ध छेड़ देने के लिए चंचल हो उठा है। परन्तु युवराज की इच्छा है कि पहले शत्रु की ओर से आक्रमण हो, तब उनकी ओर से युद्ध किया जाय। इसलिए वे विलम्ब करने लगे। परन्तु शत्रु-पक्ष भी स्थिर है, संभवतः उसके मन में भी यही बात है। अन्त में आक्रमण कर देना ही निश्चित हुआ।

सारी रात आक्रमण की तय्यारियाँ होती रहीं। राजधर ने प्रस्ताव रक्खा, "भाईसाहब, आप दोनों दस हजार सेना लेकर आक्रमण आरम्भ करदें। मेरी पाँच हजार सेना को अभी रहने दें, वह आवश्यकता के समय काम आएगी।"

"इन्द्रकुमार ने हँसते हुए कहा, "राजधर दूर रहना चाहते हैं।"

युवराज ने कहा, "नहीं, यह हँसी की बात नहीं है। राजधर का प्रस्ताव मुझे अच्छा लग रहा है।"

ईसा खाँ ने भी यही बात कही। राजधर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। युवराज तथा इन्द्रकुमार के अधीन जो दस हजार सेना थी, उसे पाँच भागों में बाँट दिया गया। निश्चित हुआ कि एक साथ पाँच ओर से शत्रु के ऊपर आक्रमण किया जाय। प्रत्येक भाग में आगे धनुर्धर-सेना रक्खी गई, मध्य में तलवार तथा भाले वाले सैनिक रहे, सबसे अन्त में घुड़सवार चले।

अराकान की 'मग' सेना ने बाँस के एक बड़े जंगल के पीछे अपना व्यूह रचा था। पहले दिन के आक्रमण से उनको कोई हानि नहीं पहुँची। त्रिपुरा की सेना उनके व्यूह को नहीं तोड़ सकी।

————

७

दूसरे दिन, सारे दिन संग्राम होता रहा, परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में, रात के समय जब दोनों पक्षों की सेना विश्राम करने लगी एवं चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब देखा गया कि दो कोस की दूरी पर राजधर अपनी सेना के साथ, नावों का पुल बना कर, कर्णफूली नदी को पार कर रहा है। एक भी मशाल नहीं, तनिक भी आवाज नहीं, बड़ी सावधानी से चुपचाप सेना का संचालन किया जा रहा है। नदी के उस पार दुर्गम पर्वत है, अतः सेना को अपने उतरने के स्थान में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

परन्तु, ईसा खाँ ने राजधर को आदेश दिया था कि वह रात को अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर बढ़े एवं शत्रु-सेना के पीछे जंगल में जा छिपे। प्रातःकाल युवराज तथा इन्द्रकुमार सामने से आक्रमण करदें एवं युद्ध करते-करते जब शत्रु-सेना थकने लगे, तभी संकेत पाते ही राजधर पीछे से धावा बोल दे। अतः पहले से ही नावों का प्रबन्ध किया गया था। परन्तु राजधर ने उस आदेश का पालन कहाँ किया ? वह तो अपनी सेना लेकर नदी के उस पार जा पहुँचा।

असल में, राजधर ने अपनी एक रहस्यपूर्ण चाल चली थी, और उसका किसी को कुछ पता तक न चला।

वह चुपचाप अराकान के राजा के शिविर की ओर चल दिया। चारों ओर पर्वत हैं, बीच में उपत्यका,—वहीं राजा का शिविर है। शिविर में सब लोग निश्चिन्त होकर सो रहे थे। उपत्यका की मशालों से शत्रु के शिविर का स्थान निश्चित करके राजधर की पाँच हजार सेना अत्यन्त सावधानी पूर्वक बड़े-बड़े जंगलों को पार करती हुई अत्यन्त मन्द गति से उपत्यका में उतरने लगी; तनिक भी आवाज नहीं हुई। अचानक पाँच हजार सेना का भीषण चीत्कार जाग्रत हो उठा। छोटा-सा पड़ाव जैसे उस चीत्कार से विदीर्ण होगया। सोते हुए लोग कीड़ों की भाँति एक साथ बाहर निकल पड़े। किसी ने सोचा, स्वप्न है. किसी ने समझा भूतों का उपद्रव है, और कोई तो कुछ समझ ही न सका।

राजा को बिना रक्तपात किए ही बन्दी बना लिया गया। राजा ने कहा, मुझे बन्दी बनाने अथवा मार डालने से यह युद्ध समाप्त नहीं होगा। मेरे बन्दी बनते ही मेरे भाई हामचुमाचू को लोग राजा बना देंगे और युद्ध पूर्ववत् चलता रहेगा। इससे अच्छा तो यह है कि मैं हार मानकर सन्धिपत्र लिखे देता हूँ। तुम लोग मुझे छोड़ दो।

राजा के इस प्रस्ताव पर राजधर तुरन्त सहमत होगया। अराकान के राजा ने हारकर सन्धि-पत्र लिख दिया, साथ ही हाथी के दाँत का बना एक मुकुट, पाँच सौ मणिपुरी घोड़े एवं तीन बड़े-बड़े हाथी भी उपहार में दिए। इस प्रकार विविध प्रकार की व्यवस्था करते हुए सबेरा हो गया, फिर दिन भी चढ़ आया।

लम्बी काली रात में जो घटना भूतों का उपद्रव मालूम पड़ रही थी; दिन निकलते ही अराकान की सेना उसे अपने अपमान का कारण समझने लगी। राजधर ने अराकान के राजा से कहा, "अब विलम्ब करना उचित नहीं है, आप युद्ध बन्द कर देने के लिए अपने सेनापति को आज्ञा-पत्र लिखकर भेज दीजिए।"

कुछ सैनिकों के हाथ आज्ञापत्र भेज दिया गया।

८

सबेरा होते ही युवराज तथा इन्द्रकुमार दो भागों में विभक्त होकर पश्चिम तथा पूर्व की दिशा से शत्रु पर आक्रमण करने के लिए चल दिए। सेना की कमी के संबंध में एक-हजारी अध्यक्ष रूपनारायण को बड़ी चिन्ता हो रही थी; वे कह रहे थे, "यदि हम अपने साथ पाँच हजार सेना और ले आते तो कोई चिंता की बात न होती।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "त्रिपुरारि की कृपा हुई तो हम इसी सेना से विजय प्राप्त करेंगे। और यदि उनका अनुग्रह नहीं हुआ तो जो कुछ हम पर बीते, उसे बीतने दो; त्रिपुरा वासी जितने कम मरें, उतना ही अच्छा है। परन्तु मेरा विश्वास है कि

आज हम अवश्य विजय प्राप्त करेंगे।"

इतना कह कर वह 'बम, बम !' की ध्वनि करता हुआ अत्यन्त उत्साहपूर्वक घोड़े पर सवार हुआ एवं शत्रु पक्ष के पड़ाव की ओर दौड़ पड़ा। उसका वह दीप्त उत्साह उसी क्षण सम्पूर्ण सेना में बिजली की भाँति व्याप्त हो गया। जिस प्रकार ग्रीष्म-काल में दक्खिनी हवा पाकर फूँस की झोंपड़ियों के ऊपर अग्नि दौड़ती है, उसी प्रकार उसकी सेना शत्रु पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़ी। उसकी गति को कोई भी नहीं रोक सका। शत्रुपक्ष का दक्षिण-दिशा का व्यूह छिन्न-भिन्न हो गया।

अन्त में तलवारों से द्वन्द्व युद्ध होने लगा। सैनिकों के मस्तक मूली-गाजर की तरह कट-कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। इन्द्रकुमार का घोड़ा कट गया। वह पृथ्वी पर जा गिरा। सेना में शोर मच गया कि वह मारा गया। परन्तु उसी क्षण अपनी तलवार द्वारा एक घुड़सवार को गिराकर, उसके घोड़े पर वह स्वयं सवार हो गया एवं रकाबों पर पाँव रखते हुए सूर्य की किरणों में तलवार को उठाकर जोर से चीत्कार कर उठा, "हर-हर, बम-बम !" युद्ध की अग्नि दूने वेग से प्रज्व-लित हो उठी। यह दशा देखकर मगों के उत्तरी व्यूह की सेना ने आक्रमण की प्रतीक्षा किए बिना, अचानक ही युवराज की सेना पर धावा बोल दिया। युवराज की सेना को ऐसे आक्रमण की आशंका भी नहीं थी, वह क्षण भर में ही विश्रृंखल हो गई। उसके घोड़े अपने ही पैदल सैनिकों के ऊपर जा पड़े, पैदल सैनिक इधर-उधर भागने लगे, और कोई भी यह निश्चित नहीं कर सका कि क्या करना चाहिए।

युवराज तथा ईसा खाँ असीम साहस के साथ अपनी सेना को संयत रखने की प्राणपण से चेष्टा करने लगे। परन्तु तनिक भी सफल न हुए। समीप ही राजधर की सेना

छिपी होगी, ऐसा समझ कर वे बारम्बार संकेत ध्वनि करने लगे, परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। ईसा खां ने कहा, "राजधर को पुकारना व्यर्थ है, वह गीदड़ अपनी माँद में से नहीं निकलेगा।" फिर वे तुरन्त अपने घोड़े से कूद कर पृथ्वी पर उतर गए। पश्चिम की ओर मुँह करके शीघ्रता से नमाज पढ़ी एवं मरने के लिए तय्यार होकर युद्ध करने लगे। चारों ओर से मृत्यु उन्हें ज्यों-ज्यों घेरती आने लगी, त्यों-त्यों जैसे उनमें यौवन लौटता आने लगा।

इतने ही में इन्द्रकुमार शत्रु-सेना के एक भाग पर विजय पाकर उनके समीप आ पहुँचा। आकर देखा, युवराज की घुड़-सवार सेना का एक समूह विशृंखल होकर इधर-उधर भाग रहा है। उसने उसे संयत करके अपने साथ ले लिया। तत्पश्चात् वह शीघ्रतापूर्वक युवराज के लिए आगे बढ़ा। परन्तु विशृंखलता ऐसी थी कि वह कुछ कर नहीं सका। राजधर की सहायता पाने के लिए बार-बार संकेत ध्वनि की गई, परन्तु कहीं से कोई सहायता नहीं आई।

अचानक जैसे मन्त्रबल से सब कुछ रुक गया। जो जहाँ था, वह वहीं स्थिर खड़ा रह गया। यहाँ तक कि घायल सैनिकों का अर्त्तनाद एवं घोड़ों का हिनहिनाना तक बन्द होगया।

सन्धि का झण्डा लेकर आदमी आगए हैं। मग-नरेश ने अपनी पराजय स्वीकार करली है। 'हर, हर! बम, बम।' के नाद से आकाश विदीर्ण होने लगा। मग-सैनिक आश्चर्य में भर कर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

———

६

राजधर जब विजयोपहार लेकर आया तो उसके मुख पर इतनी हँसी थी कि उसकी छोटी-छोटी आँखें बूंद-सी बन कर चमकने लगीं। उसने हाथी दाँत का मुकुट निकाल कर इन्द्र-कुमार को दिखाते हुए कहा, "यह देखो, मैं युद्ध की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर यह पुरस्कार लाया हूँ।"

इन्द्रकुमार क्रुद्ध हो उठा, बोला, "तुमने युद्ध किया ही कब है? यह पुरस्कार तुम्हारा नहीं. युवराज का है, वे ही इस मुकट को पहिनेंगे।"

राजधर ने कहा, "मैं विजय प्राप्त करके इस मुकुट को लाया हूँ. यह मुकुट मेरा है, इसे मैं पहिनूँगा।"

युवराज ने कहा, "राजधर का कहना ठीक है, यह मुकुट उन्हीं का है।"

ईसा खाँ को राजधर पर क्रोध आ गया, बोले, "यह मुकुट पहिन कर देश जाओगे। परन्तु तुम जो सेनापति के आदेश का उल्लंघन करके युद्ध से भाग गए, उस कलङ्क को यह मुकुट नहीं ढक सकेगा।"

राजधर ने कहा, "खाँ साहब, अब तो तुम्हारे मुंह से भी बोली निकल रही है। परन्तु यह तो बताओ, यदि मैं न होता तो तुम लोग अब कहाँ होते?"

इन्द्रकुमार ने कहा, "और चाहे जहाँ होते, परन्तु युद्ध-क्षेत्र छोड़कर किसी गड्ढे में अवश्य नहीं छिपे होते।"

युवराज ने कहा, "इन्द्रकुमार, तुम अनुचित बात कह रहे हो, सच तो यह है कि यदि राजधर न होते हम लोग बड़े संकट में पड़ जाते।"

इन्द्रकुमार ने कहा, "राजधर न होते तो आज हम पर कोई संकट ही नहीं पड़ता, और इस मुकुट को मैं जीत कर लाता। राजधर इसे चुरा लाए हैं। भाई साहब, मैं मुकुट लाकर आपको ही पहिनाता, स्वयं नहीं पहिनता।"

युवराज ने मुकुट अपने हाथ में लेकर राजधर से कहा, "भाई, आज तुम्हीं जीते हो। यदि तुम न होते तो इतनी कम सेना लेकर हमारा लड़ना व्यर्थ ही ठहरता, यह मुकुट मैं तुम्हीं को पहिनाता हूँ।" और उसे मुकुट पहिना दिया।

परन्तु इससे इन्द्रकुमार को बड़ा आघात लगा। उसने रुद्ध-कण्ठ से कहा, "भाई साहब, राजधर रात में सियार की तरह छिपकर मुकुट चुरा लाए, और वह उन्हीं को पुरस्कार में मिला। मैंने प्राणपण से युद्ध किया, परन्तु मुझे आपके मुख से प्रशंसा का एक शब्द तक नहीं मिला। ऊपर से यह और सुनने को मिल रहा है कि यदि आज राजधर न होते तो हमारा संकट से उद्धार होना कठिन था। क्यों, भाईसाहब, क्या मैंने प्रातः से सायं तक आपकी आँखों के सामने युद्ध नहीं किया? मैं युद्ध-क्षेत्र को छोड़ कर कहीं भाग गया था? क्या मैंने कायरता दिखाई थी? क्या मैं शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करता हुआ आपकी सहायता के लिए नहीं आया? आपने क्या देखकर यह कहा कि आपके परम-स्नेही भाई राजधर के अतिरिक्त अन्य कोई भी आपकी रक्षा नहीं कर सकता था?"

युवराज अत्यन्त क्षुब्ध होकर बोले, "भाई, मैं अपनी रक्षा की बात नहीं कह रहा—"

बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि इन्द्रकुमार शीघ्रता पूर्वक बाहर निकल गया।

ईसा खाँ ने युवराज से कहा, "युवराज, तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम यह मुकुट किसी को उपहार स्वरूप दो। मैं सेना-

पति हूँ, मैं जिसे दूँगा, यह मुकट उसी का होगा।" कहते हुए वे राजधर के मस्तक से मुकुट उतार कर युवराज को पहिनाने के लिए आगे बढ़े।

युवराज ने पीछे हटते हुए कहा, "नहीं, मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता।"

ईसा खाँ ने कहा, "तो रहने दो। यह मुकुट किसी को नहीं मिलेगा।" और मुकुट को पाँव से ठुकराकर कर्णफूली नदी में फेंक दिया। फिर कहा, "राजधर ने युद्ध के नियम का उल्लंघन किया है, वह दण्ड का पात्र है।"

१०

इन्द्रकुमार आहत-हृदय से अपनी सम्पूर्ण सेना साथ लेकर, शिविर छोड़ कर दूर चला गया। युद्ध समाप्त हो चुका था। त्रिपुरा की सेना पड़ाव उठाकर अपनी राजधानी को लौटने की तय्यारी कर रही थी कि अचानक एक नया संकट आ उपस्थित हुआ।

ईसा खाँ ने जब मुकुट छीन लिया था तो राजधर ने मन ही मन कहा था, "अच्छी बात है, मैं भी देखूँगा कि मेरे बिना तुम लोग किस तरह बच कर जाते हो।"

दूसरे दिन ही उसने अराकान के राजा को एक गुप्त-पत्र भेज दिया। उसमें त्रिपुरा की फूट का समाचार देते हुए, अराकान के राजा को अचानक आक्रमण कर देने के लिए लिखा गया था।

इन्द्रकुमार जब अपनी सेना को साथ लेकर सबसे अलग बहुत दूर निकल गया तथा युवराज की सेना ने राजधानी की ओर कूच किया, उसी समय अचानक मगों ने पीछे से आक्रमण कर दिया ।

राजधर अपनी सेना के साथ कहाँ गायब होगया, कुछ पता ही नहीं चला ।

युवराज के लगभग तीन हजार बचे हुए सैनिक, लगभग चौगुनी शत्रु-सेना द्वारा घेर लिए गए । ईसा खाँ ने युवराज से कहा, "आज बचने का कोई मार्ग नहीं है ।" उनकी सेना भी यह हालत देखकर उन्मत्त होकर लड़ने लगी । ईसा खाँ ने अपने दोनों हाथों में तलवारें ले लीं एवं उन्हें इतनी शीघ्रता से घुमाने लगे कि उनके चारों ओर एक भी आदमी ठहर नहीं सका । युद्ध-क्षेत्र में एक स्थान पर एक छोटा सा झरना बह रहा था, उसका पानी भी लाल होगया ।

ईसा खाँ शत्रु का व्यूह तोड़कर पर्वत की चोटी के समीप तक पहुँचे ही थे कि इतने ही में एक बाण आकर उनकी छाती में घुस गया । अल्लाह का नाम लेकर, वे वहीं घोड़े से नीचे गिर पड़े ।

युवराज की जाँघ में भी एक तीर लगा और दूसरा पीठ में लगा । तीसरा तीर उनके हाथी की छाती में जा घुसा । महा-वत के घायल होकर नीचे गिर जाने पर, हाथी उन्मत्त की भाँति रणक्षेत्र को छोड़कर भाग खड़ा हुआ । युवराज ने उसे रोकने तथा लौटाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल रहा । अन्त में, युद्ध क्षेत्र से बहुत दूर निकल कर, यन्त्रणा तथा रक्त-स्राव के कारण कमजोर हो जाने से उन्हें मूर्छा आगई और वे हौदे से नीचे कर्णफूली-नदी के तट पर जा गिरे ।

११

रात होगई। चन्द्रमा उदय हो आया। और दिनों तो चाँदनी रङ्ग-बिरंगे छोटे-छोटे जंगली फूलों पर गिर कर पर्वतीय दृश्यों को उपभोग के योग्य बना देती थी, परन्तु आज वह बीभत्सता का नग्न-रूप प्रदर्शित कर रही है। चारों ओर सहस्रों कटे हुए मस्तक तथा धड़ ही धड़ दिखाई पड़ रहे हैं। स्फटिक की भाँति जिस निर्मल झरने के पानी में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब रातभर नाचा करता था, आज घोड़ों की लाशों से उस झरने की गति ही रुक गई तथा उसका पानी रक्त से रंग गया है। दिन की तेज धूप में जहाँ मृत्यु का भीषण उत्सव हो रहा था, रात्रि की चाँदनी में वहाँ कैसी अगाध शान्ति, कैसा गम्भीर विषाद है! मृत्यु का नृत्य जैसे समाप्त होगया और विशाल नाट्य-शाला के चारों ओर भग्नावशेष मात्र पड़ा हुआ है। न कोई शब्द है, न प्राण, न चेतना। हृदय की तरङ्ग तक स्तब्ध है। एक ओर पर्वत की लम्बी छाया है, दूसरी ओर चन्द्रमा की चाँदनी।

इस युद्ध का समाचार पाते ही इन्द्रकुमार लौट पड़ा। युवराज को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह नदी-तट पर जा पहुँचा। देखा, वे बिल्कुल पानी के समीप पड़े हुए हैं। कभी-कभी अँजलि से पानी पी लेते हैं और फिर शिथिल होकर गिर पड़ते हैं। चारों ओर सन्नाटा है। दूर समुद्र से हवा आकर पेड़ों की पत्तियों को हिला जाती है। कहीं कोई जीवित-प्राणी नहीं। आकाश में केवल चन्द्रमा-भर है, उसकी चाँदनी से अनन्त नीलाकाश पाण्डुवर्ण का होगया है।

इसी बीच इन्द्रकुमार ने जब 'भाई साहब' कहकर पुकारा, तो समस्त आकाश-पाताल जैसे चौंक-सा पड़ा।

चन्द्रनारायण भी जैसे चौंक कर जग पड़े, बोले, "आओ भइया!" और आलिङ्गन के लिए अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा

दिए। इन्द्रकुमार बड़े भाई को आलिङ्गन में भरकर बच्चों की तरह रोने लगा।

चन्द्रनारायण ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया, "भाई, अब मेरे जी में जी आ गया। 'तुम आओगे' शायद यह जानकर ही मेरे प्राण अब तक नहीं निकल रहे थे। भाई, तुम मुझसे रूठ कर चले गए थे न! तुम्हें मनाए बिना कैसे रह सकता था। अब फिर भेंट हो गई, तुम्हारा स्नेह फिर वापिस मिल गया, अब मुझे मरने में कोई कष्ट नहीं होगा।" कहते हुए उन्होंने अपने दोनों हाथों से अपनी जाँघ तथा पीठ में बिंधे हुए दोनों तीर निकाल कर फेंक दिए। खून का फव्वारा छूट चला और देखते ही देखते उनका शरीर ठण्डा पड़ गया।

उन्होंने मृदु-स्वर में कहा, "मुझे अपने मरने का दुःख नहीं है, परन्तु हमारी पराजय हुई......।"

इन्द्रकुमार ने रोते हुए कहा, "पराजय आपकी नहीं हुई भाई साहब, पराजय तो मेरी हुई है।"

चन्द्रनारायण ने ईश्वर का स्मरण किया तथा हाथ जोड़कर कहा, "दयामय, इस संसार का खेल तो समाप्त हो चुका अब आप मुझे अपनी गोद में स्थान दीजिए" और उन्होंने आँखें बन्द करलीं।

पौ फटते समय नदी के तट पर चन्द्रमा जब पीले रङ्ग का हो आया, तब तक चन्द्रनारायण का चेहरा भी पीला पड़ चुका था। चन्द्रमा के साथ-साथ ही उनके जीवन का भी अस्त हो गया।

परिशिष्ट

विजयी मग-सेना ने त्रिपुरा राज्य से चटगाँव को छीन लिया। त्रिपुरा की राजधानी तक लूट ली। महाराज अमरमाणिक्य देवघाट को भाग गए तथा अपमान की ग्लानि से अपनी आत्म-हत्या करली। इन्द्रकुमार मगों से लड़ता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ, जीवन और कलङ्क को लेकर घर लौटने की इच्छा उसे नहीं हुई।

राजधर राजा बना, परन्तु केवल तीन वर्ष ही राज्य कर सका। तत्पश्चात् एक दिन गोमती में डूब कर मर गया।

इन्द्रकुमार जब युद्ध करने गया था, उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। उसका पुत्र कल्याणमाणिक्य, राजधर मृत्यु के बाद राजा हुआ। वह अपने पिता के समान ही वी था। सम्राट् शाहजहाँ की सेना ने जिस समय त्रिपुरा पर चढ़ाई की थी, उस समय कल्याणमाणिक्य ने उसे परास्त कर दिया था।

दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
Durga Sah
Municipal Library
NAINITAL
नैनीताल